श्रीअयोध्या के संत शिरोमणि

जगद्गुरु अनन्त श्री स्वामी पं० रामवल्लभाशरणजी महाराज

का

जीवन-चरित्र

★

भक्तों के विशेष अनुरोध प

★

रचयिता :

स्वामी श्री [illegible]रामदेवजी

तथा

श्रीगंगासहायजी बहुरा 'प्रेम'

ा ही
लिए एवं
सतत वर्णन
मारे आचार्य साक्षात्
र अब भी भक्तों को
तब बड़े-बडे राजा-
कमिश्नर आदि तथा
हते थे । जिस
गए और
रोगी
हान्
पी
में

मेरी अन्तरात्मा के भाव

(श्रद्धेय अनन्तश्री रामपदार्थदासजी महाराज 'वेदान्ती')

अपने श्रीगुरुदेव का सुयश अपने मुख से मैं क्या वर्णन करूँ ? इस भारतवर्ष में प्राय: सभी विद्वान् उनके गुणगणों से परिचित हैं। जगत् के उद्धार करनेवाले जगत्प्रसिद्ध आचार्य चरणों के प्रताप एवं प्रभाव को प्रेमियों ने प्रत्यक्ष देखा है। सूर्य के प्रकाश के विषय में कोई कहे तो कहेगा ही क्या ? फिर भी अपनी वाणी पवित्र करने लिए एवं उनका आदर्श स्मरण रखने के लिए उनका यश सतत वर्णन करना ही कर्त्तव्य है।

मेरी दृष्टि में तो यही है कि हमारे आचार्य साक्षात् भगवान् थे। वे साकेत धाम से आकर अब भी भक्तों को दर्शन देते हैं। जब आप पृथ्वी पर थे तब बड़े-बड़े राजा-महाराजा, शास्त्र मर्मज्ञ विद्वान्, कलक्टर कमिश्नर आदि तथा बड़े-बड़े सिद्ध महात्मा भी आपकी कृपा कोर चाहते थे। जिस पर आपकी कृपा हो गई, वह निर्धन धनवान् हो गए और वह वन्ध्याएँ पुत्रवती हो गईं। बड़े-बड़े मरणासन्न रोगी पहलवान हो गए। गूँगे बोलने लगे और महामूर्ख महान् विद्वान् हो गए। नास्तिक आस्तिक हो गए और घोर पापी आपके सत्संग से परम पुण्यात्मा हो गए।

आपमें अनेकों अलौकिक चमत्कार देखे गए तथा असाधारण प्रतिभा देखी गई। इस पर भी आपके आसन में

केले की चटाई बिछी रहती थी। आप कहा करते थे कि साधुओं को चाहिए कि चाहे जितना भी वैभव प्राप्त हो परन्तु अपने स्वरूपानुरूप ही रहे। अपने धर्म को न छोड़े। इसी आदर्श को दिखलाने के लिए आप अत्यन्त रुग्णावस्था में भी नित्यकर्म कभी नहीं छोड़ते थे; यहाँ तक कि पूर्ण साधु धर्म का निर्वाह किया। और आप ऊर्ध्वरेता भी थे। आपने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया था, इसीलिए आपको कुण्डलिनी जाग्रत थी और अत्यन्त मधुर मुस्कान के साथ कोमलवाणी निकलती थी।

जिस प्रकार से मनु-शतरूपा ने तप करके वरदान प्राप्त किया था उसी प्रकार से श्रीमहाराजजी के माता-पिता ने तप करके वरदान माँगा था। उसी के फलस्वरूप श्रीमहाराजजी का प्राकट्य हुआ था। बाल्यकाल से ही आपमें विलक्षण बातें देखी गईं। सहस्रों विचित्र घटनाएँ हैं, जो कि प्रस्तुत पुस्तक में वर्णित हैं।

श्रीमहाराजजी का स्थान श्रीजानकीघाट से लगा कर श्रीहनुमानबाग एवं बाटिका तक मकानों का ताँता लगा हुआ हैं। ढाई तीन सौ मूर्ति संतों को प्रसाद नित्य पवाना तथा पाठशाला, गोशाला एवं उत्सवों में, अनेक प्रकार के परोपकारों में अनन्तधनराशि का नित्य व्यय होना; आपका महान् प्रताप हैं। क्योंकि कोई रियासत नहीं हैं और कोई भी आमदनी नहीं है। केवल श्रीमहाराजजी के तपोबल से न जाने कैसे कहाँ से धन आता और व्यय होता। यह आश्चर्य है।

श्रीमहाराजजी में अनेकों सिद्धियाँ भी थीं। श्रीहनुमानजी का और साक्षात् युगलसरकार का दर्शन भी होता था। आपके सौपे हुए कार्य भार को मैं अब तक यथाशक्ति चला रहा हूँ। श्रीमहाराजजी सदा मेरे साथ रहते हैं, मैं प्रत्येक कार्य उनकी इच्छा से ही करता हूँ।

—:०:—

नम्र निवेदन

श्रीगुरुदेव परम श्रद्धेय वेदान्ती श्रीरामपदार्थदासजी महाराज का तो यह मंतव्य है कि श्रीमहाराजजी का जीवनवृत्त रामायण तथा भक्तमाल की भाँति नित्य पाठ की वस्तु है। यह पाठकों के लोक-परलोक के सभी मनोरथों की पूर्ति कर श्रीसाकेतधाम में पहुँचा कर दिव्य दम्पति श्रीसीतारामजी की अखण्ड नित्य सेवा के अपार आनन्द की प्राप्ति करानेवाला है। अतः प्रेमियों को इसका नित्य ही पाठ करना चाहिए।

प्रस्तुत पुस्तक के आरम्भ में "मेरी अन्तरात्मा के भाव" शीर्षक जो लेख मुद्रित हुआ है तथा तृतीय भाग में जो लेख संकलित किए गए हैं, वे श्रीअवध से प्रकाशित होनेवाली "साकेत" नामक पत्रिका के नवम्बर (१९५२ ई०) के

"श्रीरामवल्लभाशरण—अंक" में मुद्रित हो चुकी हैं। चूँकि ये सभी रचनाएँ भगवान् की विशिष्ट विभूति श्रीमहाराजजी के श्रीचरणों में भक्तिवर्धक हैं, अतः इनका संकलन अनिवार्य हो गया।

पुस्तक का प्रथम भाग रामायण प्रेस, लहेरियासराय से सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ था जो ज्यों-का-त्यों मुद्रित कर दिया गया है जिसके रचयिता हैं स्वामी श्रीजयरामदेवजी।

श्रीमहाराजजी का जीवनचरित्र "श्रीसद्गुरु-चरितामृत" के नाम से खड्गविलास प्रेस, पटना से पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध दो भागों में सं० २०२१ में पद्यरूप में प्रकाशित हुआ था। पूर्वार्ध के आधार पर ही स्वामी श्रीजयरामदेवजी ने "प्रथम भाग" की रचना की है। उत्तरार्ध का भावानुवाद इस पुस्तक के द्वितीय भाग में पहली बार गद्यरूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

अतः प्रेमियों से नम्र निवेदन है कि वे अनुवाद या मुद्रण सम्बन्धी त्रुटियों की ओर ध्यान न देकर, इस 'प्रेमरस' से ओतप्रोत रससागर से अनमोल सीकरों को संग्रह कर अपने मानवजीवन को सफल करें।

—मुद्रक

श्रीरामनवमी
चैत्र शुक्ल,
सम्वत् २०६२

रमेश प्रिंटिंग वर्क्स,
मीठापुर, पटना

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
प्रथम भाग	
१ परिचय	१
२ प्रादुर्भाव	६
३ बाल-लीला	११
४ मन्दिर-महिमा	१७
५ अनुष्ठान और दीक्षा	२१
६ काया-कल्प	३३
७ देव-दर्शन	३७
८ तीर्थ-यात्रा	४२
९ शंकर-कृपा	५४
१० अवध-प्रवेश	५७
११ कूप-पतन	६२
१२ लीला स्वरूपों का प्रभाव	६७
१३ अलौकिक दृश्य	७४
१४ कथा-प्रचार	८१
१५ गुरु-बियोग	८५
१६ आत्मिक-शक्ति	८८
१७ श्रीसरयू-आकर्षण	९६
१८ न्याय	१०१
१९ स्थान-निर्माण	१०३
२० विशेषोन्नति	१०५
२१ श्रीरामार्चा-प्रचार	१०७
२२ अमोघ अस्त्र	११२
२३ आदर्श-आचरण	११५
२४ कैङ्कर्य-निष्ठा	१२०
२५ शिष्य-समुदाय	१२२
२६ प्रेतोद्धार	१२६
२७ अनेक रूप धारण-शक्ति	१३५
२८ विश्वव्यापी भक्ति-प्रचार	१३७
२९ साहित्य-सेवा	१३९
३० अन्तर्द्धान-लीला	१४१
३१ उपदेश	१४६
द्वितीय भाग	
३२ श्रीयुगलसरकार के प्रत्यक्ष दर्शन	१५३
३३ नास्तिक को आस्तिक बनाना	१६९

विषय	पृष्ठ
३४ शरणागत को प्राणदान	१७१
३५ मारक निवारण चरित्र	१७६
३६ श्रीपरमहंसजी का रोग निवारण	१८१
३७ शिशु को प्राणदान	१८३
३८ द्विजतनय रक्षण	१८५
३९ प्रेतबाधा निवारण	१९०
४० मजदूरनी को प्राणदान	१९५
४१ महामारी निवारण	१९६
४२ वगसरा कुमार को शरण प्रदान	२०५
४३ श्रीद्वारिका यात्रा	२०९
४४ श्रीपुष्कर तथा जयपुर यात्रा	२१७
४५ अमावाँ नरेश पर अनुकम्पा	२१९
४६ श्रीहरिनाम संकीर्तन तथा रामधुनि प्रचार	२३०
४७ बहुराजी को शरण प्रदान	२४०
तृतीय भाग	
४८ मेरे अनुभव	२४७
४९ मुझे जीवन दान	२५०
५० श्रीमहाराज कौन थे ?	२५१
५१ पुण्य स्मृति	२५३
५२ गुप्त रहस्य	२५७
५३ गुरुदेव के संस्मरण	२६०
५४ अनमोल निधि	२६२
५५ दुःख क्यों ?	२६६
५६ ईश्वर के दर्शन क्यों नहीं होते ?	२६९
५७ वैष्णवता क्या है ?	२६९
५८ निर्मल बुद्धि की प्राप्ति का उपाय	२७०
५९ ईश्वर की प्राप्ति सुगम उपाय	२७१

—:o:—

श्रीसीतारामाभ्यां नमः ।

श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो नमः ॥

परिचय

प्रिय-प्राया वृत्तिर्विनय मधुरो वाचि नियमः
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनव गीतः परिचयः ।
पुरोवा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासित रसं
रहस्यं साधूना मनुपधिविशुद्ध विजयते ॥

(भवभूति)

भगवान् के प्यारे और भगवान् के साक्षात् स्वरूप-संतों की अनन्त गुणावली का कौन वर्णन कर सकता है ? किन्तु, उनके यशोगान से हृदय निर्मल हो जाता है और भगवद्दर्शन का द्वार उन्मुक्त हो जाता है। इसीलिये उनके चरित्रों का गान करने की मुझे भी लालसा हुई।

मध्य भारत में बुन्देलखण्ड प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थल है। वहां 'पन्ना' नामक प्राचीन राज्य में एक 'रणेह' नामक अत्यन्त सुन्दर ग्राम बसा हुआ है। रणेह ग्राम धन-धान्य सम्पन्न और परम रमणीय है। उसी ग्राम में कान्यकुब्ज ब्राह्मण-वंश-विभूषण, विश्वविख्यात, अद्वितीय विद्वान् और

परमयोगी पं० गदाधरजी निवास करते थे। उनकी शक्ति अपार थी। उनकी अनेकों अलौकिक चमत्कारपूर्ण बातें प्रसिद्ध हैं, उनमें से एक साधारण घटना का यहाँ वर्णन किया जा रहा है।

पन्नाराज्य में एक बार खान खोदते समय एक प्राचीन धनुष निकला। वह धनुष लोहे का था। उसकी बनावट भी विचित्र थी और वह वज्र के समान सुदृढ़ और वजन में भारी तथा विशाल आकारवाला था। राजा ने उस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने की कोशिश की, किन्तु बड़े-बड़े पहलवान भी न चढ़ा सके। कौतुहलवस राजा ने उस धनुष को दिखाने के लिये मेला लगवाया और धनुष पर रोदा चढ़ानेवाले को विशेष पुरस्कार देने की घोषणा करा दी। पुरस्कार के लोभ से बहुतों ने चेष्टा की। किन्तु वे उसे जरा भी न झुका सके, उलटे उनलोगों के हाथ-पैर टूट गये।

एक दिन दरबार में राजा ने प्रश्न किया—"क्या ऐसा कोई भी वीर पृथ्वी पर नहीं है, जो इस धनुष को चढ़ा सके ?" यह सुनकर एक सभासद ने कहा—"रणेह ग्राम में पं० गदाधरजी बड़े बलवान हैं। उनका बल-पौरुष परशुरामजी के समान है, वे चाहें तो इसे चढ़ा सकते हैं। किन्तु, वे अपने ज्ञान-ध्यान में लगे रहते हैं, उनका यहाँ आना असम्भव है।"

यह सुनते ही राजा ने अपने मंत्री को भेजा। उसने विनय पूर्वक लिवा लाने की चेष्टा की। अत्यन्त आग्रह करने पर संकोच-सहित पं० गदाधरजी आये। राजा ने धनुष मँगाकर सभा में रख दिया और पं० गदाधरजी से चढ़ाने के लिये प्रार्थना की। पं० गदाधरजी ने कहा—"राजन् ! यदि मैंने धनुष चढ़ा दिया तो फिर मैं धनुष को ले जाऊँगा। यह शर्त स्वीकार करनी होगी।" राजा ने शर्त स्वीकार ली। पं गदाधरजी ने अपने बाहु और योग-बल से उस धनुष को एक पत्थर की चट्टान पर खड़ा किया, उसको जोर से दबाकर जब धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने लगे तो नीचे का पत्थर टूट गया। किन्तु इन्होंने बलपूर्वक खींचकर उस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा ही दी। सारी सभा जय-जयकार करने लगी। आश्चर्य से विह्वल होकर राजा भी ब्राह्मण देव की प्रशंसा करने लगा।

राजा ने पं० गदाधरजी की खूब पूजा की। सुन्दर वस्त्राभूषण पहना घोड़े पर चढ़ाकर सवारी निकाली। चलते समय राजा ने दो गाँव भेंट में दिये और धनुष भी साथ ही ले जाने की प्रार्थना की। किन्तु, पं० गदाधरजी ने कहा—"राजन् ! धनुष आदि राजाओं को ही शोभा देते हैं। विप्रों का तो तप ही सर्वस्व है, इसलिये इसे आप ही रक्खें।"

पं० गदाधरजी अपने ग्राम 'रणेह' में आकर संत-सेवा करने लगे। धन-धान्य से परिपूर्ण भवन में नित्य-प्रति संत-समागम होता था और कथा-कीर्त्तन के कारण बड़ा सुहावना

प्रतीत होता था। इन्हीं पं० गदाधरजी के परम प्रतापी पुत्र रत्न पं० रामलालजी हुए। पिता के तिरोधान के पश्चात् पं० रामलालजी ने गृह-भार सँभाला और अपने गुणों से सब को सुखी कर दिया। पं० रामलालजी की पत्नी का नाम श्री रमादेवी था। दोनों ही बुद्धिमान् और भक्तशिरोमणि थे। पं० रामलालजी भी अपने पिता के समान ही अद्वितीय विद्वान् और तपस्वी थे। आपको अनुष्ठान करने का बड़ा शौक था। अनेक ब्राह्मणों द्वारा आपके भवन में प्रायः हवन होता ही रहता था।

एक बार विप्रवर पं० रामलालजी अपने द्वार पर बैठे हुए अपने मित्रों के साथ वार्तालाप कर रहे थे। उसी समय चारों धाम यात्रा के लिये निकले हुए कुछ संत भ्रमण करते हुए आ पहुँचे। संतों का सम्मान करके पंडितजी ने नाना-प्रकार के पदार्थ पवाये। रात्रि में संतों का खूब सत्संग हुआ। उन संतों ने सत्संग में 'विनय-पत्रिका' नामक तुलसी-कृत ग्रंथ की बड़ी प्रशंसा की। उस ग्रन्थ का एक पद सुनाकर पंडितजी के हृदय में खलबली मचा दी। वह पद इस प्रकार है।

—"मन पछितैहै अबसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, बचन अरु ही ते॥
सहसबाहु, दशवदन आदि नृप बचे न काल बली ते।
हम-हम करि धन-धाम सँवारे, अन्त चले उठि रीते॥

सुत-बनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सबही ते ।
अन्तहु तोहिं तजेंगे पामर ! तू न तजै अबही ते ।।
अब नाथहिं अनुराग, जागु जड़, त्यागु दुराशा जी ते ।
बुझै न काम-अगिनि 'तुलसी' कहुँ, विषय-भोग बहु घी ते ।।',

पद को सुनते ही, इसमें भरे हुए गम्भीर वैराग्य-रूपी सागर में गोते खाने लगे। पं० रामलालजी स्वयं बड़े भारी विद्वान् थे। उनके हृदय में सहसा इस उत्तेजक पद ने जादू का-सा असर दिखलाया। वे सोचने लगे—बस, अभी इस संसार को त्याग निर्जन वन में जाकर भगवत्प्राप्ति के लिये तप करना चाहिये। रात्रि-भर उनको संसार की अनित्यता का अनुभव होता रहा। निद्रा त्यागकर अचिन्त्य तत्त्व का चिन्तन करने लगे।

प्रातः काल उन्होंने अपने गृह की सम्पत्ति को लुटाना प्रारम्भ कर दिया। अपने मन की बात धर्म-पत्नी से बतलाना नहीं चाहते थे, किन्तु रमादेवी बड़ी बुद्धिमती थीं, उन्होंने अनुमान से ही अपने पतिदेव की मनोभावना समझ ली और व्याकुल होकर चरणों में पड़ गईं। श्रीमती रमादेवी ने अपने करुण-क्रन्दन से पतिदेव को प्रसन्न कर लिया।

—:o:—

प्रादुर्भाव

शान्तो महान्तो विकसन्ति सन्तो,
वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः ।
तीर्णा स्वयं भीमभवार्णवं जना-
नहेतुनान्यानपि तारयन्तः ॥

"वसन्तऋतु के सदृश संसार को प्रफुल्लित करनेवाले, स्वयं भवसागर से तरे हुए और अकारण ही अन्य जीवों को तारनेवाले, शान्त, महान्त संत संसार में प्रकट होते हैं।" उनको मनुष्य नहीं साक्षात् भगवान् का ही रूप समझना चाहिये। क्योंकि श्री पद्मपुराण के पातालखण्ड में वर्णन है—

दुःखितानां हि भूतानां दुःखोद्धर्त्ता हि यो नरः ।
स एव सुकृति सन्तो ज्ञेयो नारायणांशजः ॥

"दुःखों से पीड़ित प्राणियों को जो दुःख से निकालनेवाला है वही सुकृती संत है और उसे ही भगवान् का अंश समझना चाहिये।"

आदि-सृष्टि में भारत-भूमि को ही सर्वोत्तमता से ईश्वर ने रचा और सर्वप्रथम यहाँ ही मनुष्यों की सृष्टि हुई। वेदों का निर्माण होने के बाद महर्षियों ने अनुपम विद्वता और सर्वज्ञता प्राप्त कर अपार साहित्य का निर्माण किया। मनुष्यों ने कर्म और अकर्म का ज्ञान प्राप्त कर शुभाचरण द्वारा उन्नति पथ की ओर पदार्पण किया।

लाखों महर्षि ऐसे प्रतापी हुए हैं कि जो अपने तपोबल से नवीन सृष्टि बनाने और समुद्र को एक क्षण में पी जाने की क्षमता रखते थे। भारतवर्ष ज्ञान-विज्ञान का भण्डार तो सदा ही रहा, किन्तु योगबल, तपोबल और शूर-वीरता में तो देवलोकों से भी बढ़ा-चढ़ा रहा। देवता लोग भी यहाँ के काकुत्स्थ, मुचुकुन्द, दशरथ जैसे चक्रवर्ती नरेशों की सहायता द्वारा असुरों का संहार करते थे।

प्रत्येक युग में स्वयं भगवान् भी अवतार धारण करके अधर्म का नाश और धर्म की रक्षा करते हैं। इसी प्रकार ईश्वर के प्रिय पुार्षद भी आवश्यकतानुसार अवतार लेकर लोककल्याण करते रहते हैं। आजकल घोर कलिकाल में भी पाप-पयोनिधि में डूबते हुए प्राणियों का उद्धार करने के लिये महापुरुष प्रकट होकर सन्मार्ग दिखलाते हैं, नहीं तो पापाचारियों के बोझ से पृथ्वी पाताल में चली जाय।

जिस समय ऐसे महापुरुष संतशिरोमणि प्रकट होते हैं

उस समय उनके दर्शनों और सत्संग से तथा उनके अङ्ग-स्पर्श से पावन हुए पवन से, संसार मंगलमय बन जाता है।

❀ ❀ ● ❀ ❀

विप्रवर श्रीरामलालजी के दो कन्याएँ और एक पुत्र प्राप्त हुए। पंडितजी ने अपने भजन-साधन को इतना बढ़ाया था कि अनेक संतजन आश्चर्य करते थे। संत-सेवा का तो उन्होंने व्रत ले रक्खा था। भगवत्कृपा से धन की कमी थी नहीं। दिन-रात दान में ही उनका समय व्यतीत होता था।

एक बार रात्रि में पंडितजी ने स्वप्न में देखा कि एक तेजोमय महात्मा प्रकट हो गये। उन्होंने कहा—"पंडितजी, आपकी जो इच्छा हो वह वरदान मुझसे माँग लें।"

पंडितजी ने कहा—"मुझे एक ऐसा पुत्र प्रदान कीजिये कि जो संसार में भक्ति का प्रचार करे। मुझे परोपकार बड़ा प्रिय है, किन्तु मैं अन्य उपकारों के बजाय जीवों का भव-फंद छुड़ाना सर्वश्रेष्ठ उपकार मानता हूँ।"

महात्मा ने कहा—"मैं एक युक्ति बतलाता हूँ, तुम जप करो। भगवान् की कृपा से तुम्हें ऐसा ही पुत्र प्राप्त होगा।"

तदनन्तर 'श्रीराममंत्र' बतलाकर वे महात्मा अदृश्य हो गये। पंडितजी की आँखें खुल गईं। उन्होंने श्रीमती रमा देवी को अपने स्वप्न की सारी घटना कह सुनाई।

उसी दिन से पंडित रामलालजी ने विधिवत् अनुष्ठान प्रारम्भ किया। जिस दिन अनुष्ठान समाप्त हुआ उसी दिन

भगवान् ने दर्शन देकर दम्पति को कृतार्थ कर दिया और दम्पति को पुत्र प्राप्ति का वरदान दे परम प्रसन्नता सूचित की।

तदनन्तर कुछ ही दिनों में श्रीमती रमादेवी ने गर्भ धारण किया। जिस दिन से गर्भ धारण किया उसी दिन से श्रीमती रमादेवी को नाना प्रकार के दिव्य-दर्शन स्वप्न आदि में होने लगे। विक्रमी संवत् १९१५ आषाढ़ कृष्ण १३ को पुत्र-रत्न प्रकट हुआ। बिजली के सदृश चमकवाले गौर वर्ण बालक की छवि देखकर दम्पति को महान् आनन्द हुआ। बालक के जन्म के पश्चात् अपार उत्सव मनाया गया। उस उत्सव का वर्णन करना असंभव है। नाना प्रकार के बाजे बजाये गये तथा नृत्य-राग-रंग की छटा अपूर्व थी।

कुछ दिनों के बाद एक ज्योतिषी "रणेह" में पधारे। ज्योतिषीजी ने बालक की कर-रेखाओं को देखकर लक्षण वर्णन किये। उन्होंने बतलाया—"मैंने आज तक अनेक बालकों की हस्त-रेखायें देखीं, किन्तु ऐसी दिव्य रेखायें मैंने देखीं ही नहीं। महापुरुषों के सब लक्षण इनमें विद्यमान हैं, इसलिये आपका पुत्र कोई असाधारण महापुरुष है।"

दम्पति को बड़ी प्रसन्नता हुई। माता-पिता को आनंद प्रदान करते हुए बालक बढ़ने लगा। बालक का नाम धनुषधारी रक्खा गया। बाल-क्रीड़ाएँ करके धनुषधारी ग्रामवासियों को आनन्दित करने लगे। जब धनुषधारी चार वर्ष के हुए तब उनके पिता ने अपनी बड़ी कन्या का विवाह-

किया। उसके कुछ ही दिनों बाद पंडितजी के बड़े पुत्र भी परलोक सिधार गये।

विपत्ति आती है तब चारों ओर से आती है। श्रीमती रमा देवी के एक कन्या और हुई। वह कन्या अभी छः महीने की भी नहीं हो पाई थी कि श्रीमती रमादेवी भी परलोक सिधार गईं। पत्नी के तिरोधान के पश्चात् पंडित रामलालजी अत्यन्त खिन्न हो गये। अपने दुःख को वे छिपा न सके। उन्होंने अपने सम्बन्धियों से अपने हृदय की वेदना कह सुनाई। बोले—"हमारी आन्तरिक आकांक्षा अब यही है कि सब त्याग करके केवल भगवद्भजन करें, किन्तु इन दो कन्याओं और पुत्र धनुषधारी का पालन कौन करेगा"—यह चिन्ता व्याकुल कर रही है। सम्बन्धी लोगों ने नाना प्रकार से समझाकर उन्हें सन्तान पालन करना ही सर्वश्रेष्ठ धर्म बतलाया।

—:o:—

बाल-लीला

जो सृजि पालइ हरइ बहोरी।
बाल-केलि सम विधि मति भोरी॥

श्री ब्रह्माजी संसार को बड़ी सुन्दरता से रचते हैं और पालन करके बढ़ाते हैं; फिर प्रलय करके नष्ट कर डालते हैं। सचमुच यह संसार बालकों के खेल की तरह है। बालक बड़े प्रेम से धूल का घर बनाता है, लकड़ियाँ लाकर छत बनाता है। खेल-कूद करके जब शाम को अपने घर जाने लगता है, लात मार कर उसे तोड़-फोड़ डालता है।

इसी प्रकार एक दिन बाल-क्रीड़ा करते हुए हमारे चरित्र-नायक धनुषधारीजी बालकों के साथ खेल रहे थे। उसी समय एक विचित्र घटना घटी। एक बालक जिसका रंग बिलकुल श्याम था, आकर खेलने लगा। उस नवीन बालक की सुन्दरता देखकर श्री धनुषधारीजी प्रसन्न होकर उसके साथ खेलने लगे। इस समय धनुषधारीजी की आयु पाँच वर्ष की थी।

खेलते-खेलते उस बालक से धनुषधारीजी ने पूछा— "तुम्हारा नाम क्या है? उसने उत्तर दिया—"मेरा नाम

चंदन है।" उसी दिन चंदन में और धनुषधारी में बड़ा प्रेम हो गया। यहाँ तक कि जब खेल-कूद कर घर जाने को तैयार हुए तो धनुषधारीजी चंदन का हाथ पकड़ कर रोने लगे। उस दिन खेल में अपूर्व आनन्द आया था। जब धनुषधारी को बहुत व्याकुल देखा तब चन्दन ने कहा—"मैं फिर कल आ जाऊँगा। अब तुम अपने घर जाओ; मुझको भी तुम्हारे बिना अच्छा नहीं लगेगा।" इस प्रकार प्रेमालाप करके धनुषधारीजी अपने घर लौट गये।

दूसरे दिन बहुत उत्सुकता से धनुषधारी प्रतीक्षा करने लगे, किन्तु चन्दन का आगमन नहीं हुआ। बेचारे धनुषधारी विरह से व्याकुल होकर मन-ही-मन रोने लगे। धीरे-धीरे सन्ध्या हो चली, किन्तु चन्दन नहीं आये। खेल-कूद भूल कर चन्दन का ध्यान करते हुए धनुषधारीजी घर गये। रातभर नींद नहीं आई। दूसरे दिन फिर प्रतीक्षा करने लगे—इतने में ही पीछे से आकर किसीने धनुषधारी की दोनों आँखें मूँद दीं। सहम कर अपनी आँखें छुड़ाने की चेष्टा करते हुए धनुषधारीजी ने बड़ा जोर लगाया, किन्तु छुड़ा न सके। बहुत व्याकुल देख कर उसने आँखों से हाथ हटा लिया। आँखें खोल कर धनुषधारीजी ने देखा कि उनका प्रिय सखा चन्दन खड़ा मंद-मंद मुस्करा रहा है। चन्दन ने उनका सारा हृदय-ताप हर लिया, ठंढक आ गई। दोनों मिलकर तरह-तरह के खेल खेलने लगे। गेंद उछाल-उछाल कर आमोद-

प्रमोद में मग्न हो गये। इतने में धनुषधारीजी के पिता पंडित रामलालजी आ गये। उनके आते ही वह सुन्दर सुकुमार बालक चंदन अदृश्य हो गया।

पिता ने पूछा—"वह कौन बालक था ? कहाँ से आया था ? मेरे देखते-देखते कहाँ गायब हो गया। भैया ! तुम किसके साथ खेल रहे थे ?" धनुषधारीजी स्वयं आश्चर्य-चकित थे। पिता के आने से वे संकुचित होकर सिटपिटा गये। कुछ उत्तर नहीं दे सके।

इधर पिताजी कार्यवश उसी दिन दूसरे ग्राम को जाना चाहते थे। अपने पुत्र धनुषधारी के साथ नौकर-चाकरों को लेकर पंडित रामलालजी चल दिये। मार्ग में घने जंगल होकर जाना था। वन की रमणीक शोभा देखते हुए सब जा रहे थे कि वृक्षों के झुण्ड से एक तेजःपुंज तपस्वी महात्मा निकलते हुए दिखलाई दिये। उनके मुख पर प्रकाश छाया हुआ था। उनके दर्शन मिलते ही सब लोग सुधि-बुधि भूल कर उनके चरण छूने दौड़े। किन्तु, ज्योंही चरण छूना चाहा कि वे महात्मा दस गज की दूरी पर दिखलाई दिये। आगे बढ़कर फिर जब निकट गये तो वे फिर दस गज दूर नजर आये। यह कौतुक देख पंडित रामलालजी ने अपने अनुचरों द्वारा चारों ओर से मण्डल बनाकर घेर लिया और स्वयं निकट जाकर चरण छूने लगे। किन्तु न जाने कैसे, वे महात्मा मण्डल से बाहर फिर दस गज

की दूरी पर दिखलाई दिये। यह देख कर पंडितजी ने आर्त्त होकर प्रार्थना की—"महात्मन् ! हम अपराधी जीव हैं, आप हम पतितों से चरणों का स्पर्श नहीं कराना चाहते हैं, यह उचित ही है। किन्तु मेरे इस बालक के ऊपर तो कृपा करें।"

ऐसा कह बालक को दूर ही से प्रणाम कराने लगे। वह महात्माजी सहसा आगे बढ़ आये और बालक को गोद में उठा कर प्यार करने लगे। बालक के कान में कुछ कहा और बार-बार समझाते हुए कुछ आज्ञा-सी करने लगे। बालक ने भी कुछ कहा। मानों दोनों पूर्व के परिचित से हों, ऐसी बातें करने लगे।

तदनन्तर महात्माजी जिस ओर से आये थे उसी ओर घनघोर वन में प्रवेश कर गये। पंडित रामलालजी को इस घटना से बड़ा आश्चर्य हुआ। पुत्र को लेकर ग्राम में गये और कार्य समाप्त कर अपने ग्राम को लौट आये। उस दिन से बालक धनुषधारी का मन किसी कार्य में नहीं लगता था। दिन रात उन्हीं महात्माजी की बातों का चिन्तन बना रहता था। पंडित रामलालजी ने बहुत पूछा, किन्तु धनुषधारीजी ने महात्माजी के साथ जो वार्तालाप हुआ था, कुछ भी नहीं बतलाया।

इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत होने पर एक दिन बालक धनुषधारीजी ग्राम के बालकों के साथ खेलने चले गये। ग्राम के समीप एक पर्वत था। उसपर 'पटका' के वृक्ष बहुत थे।

'पटका' को आग में रखने से धड़ाका होता था। इसलिये सब बालकों के साथ पटका तोड़ने पहाड़ पर चढ़ गये, किन्तु धनुषधारीजी थोड़ी ही दूर पर थक गये। बड़े-बड़े बालक ऊपर चले गये। धनुषधारी बैठ कर एकान्त में महात्माजी का चिन्तन करने लगे और उनसे मिलने की लालसा से व्याकुल हो ऐसा रुदन करने लगे कि जिस प्रकार अबोध बालक अपनी माता से मिलने के लिये विकल होता है। बालक को अत्यन्त व्याकुल हो रोते देख वे तेजःपुंज महात्माजी तत्काल प्रकट हो गये। धनुषधारी देखते ही किलक उठे और चरणों में पड़ गये। महात्माजी ने बालक को उठा लिया और बारंवार दुलार कर समझाने लगे— "धैर्य के साथ समय व्यतीत करो। जब तुम बड़े हो जाओगे तब मैं तुम्हें मिलूँगा। इस तरह व्याकुल मत हो तुम्हें दुखी देख कर मुझे बड़ा कष्ट होता है।"

इतने में पहाड़ पर से बहुत से बालक हाथों में पटका ले-लेकर उत्तर आये। बालकों के आते ही महात्माजी अ श्य हो गये। उस दिन से धनुषधारीजी को महात्माजी का वियोग-दुःख कम अनुभव होता था। किन्तु कभी-कभी रात्रि में सोते-सोते चौंक पड़ते थे और महात्माजी को "हा गुरुदेव!" कह कर पुकार उठते थे।

धीरे-धीरे धनुषधारी की आयु सात वर्ष की हो गई। इधर पंढित रामलालजी ने अपनी दोनों कन्याओं में से बड़ी का

विवाह सुयोग्य वर के साथ कर दिया। पंडित रामलालजी को एक बार रात्रि समय स्वप्न में श्री हनुमानजी ने आज्ञा दी— "तुम परिवार सहित पौंडी-ग्राम में जाकर निवास करो। वहाँ पर तुम्हारा विशेष कल्याण होगा।"

श्री हनुमानजी की आज्ञा से पंडितजी परिवार सहित पौंडी-ग्राम में आकर बस गये।

—:०:—

मन्दिर-महिमा

खोके दीन्हों धाम निज, रोके दीन्हीं लंक।
अंधाधुंध दरबार है, 'तुलसी' रहो निशंक॥

भगवान श्री रामचन्द्रजी ने वैर करनेवाले रावण के ऊपर क्रोध करके उसे संसार-जाल से छुड़ा कर अपना परम-धाम प्रदान किया और सेवा करनेवाले विभीषण को केवल राक्षसों से भरी हुई लंका का तुच्छ राज्य देकर अपनी प्रसन्नता सूचित कर दी। इसीलिए तुलसीदासजी कहते हैं—"भाई श्री रामजी का अंधाधुंध दरबार है। पता नहीं किस समय किसको क्या दे डालें! भगवान की नाराजगी और प्रसन्नता का फल क्या होगा। कुछ समझ में नहीं आता। इससे निशंक रहना चाहिये। अंधाधुन्ध में कभी-न-कभी हमारी भी टिप्पस लग ही जायगी।"

पौंडी-ग्राम में आकर पंडित रामलालजी महर्षियों के समान अपने आचरणों द्वारा संसार को शिक्षा देने लगे।

बालक धनुषधारी के दर्शन करके ग्राम-निवासी अत्यंत आनंदित होते थे। एक तो सौन्दर्य अपूर्व था, दूसरे शील-

स्वभाव, शान्त वृत्ति तथा बुद्धि-विचार देखकर सब आश्चर्य करते थे। बड़े-बड़े विद्वान् पंडित रामलालजी के पास आते थे। वे बालक को देखकर चकित रह जाते थे। लाखों बालकों में ऐसे दिव्य गुण नहीं दर्शित होते थे जैसे धनुषधारी में थे। बालकों के साथ खेलते हुए भी कभी आपने लड़ाई-झगड़ा नहीं किया। अपने सर्वगुण-सम्पन्न पुत्र को पंडित रामलालजी ने विद्याध्ययन कराना प्रारंभ कर दिया।

पौंडी-ग्राम में एक श्रीसीतारामजी का विशाल मन्दिर है। उस मन्दिर में श्रीहनुमानजी की एक अत्यंत सुन्दर और विशाल मूर्ति है। वहाँ पर धनुषधारीजी नित्यप्रति दर्शनार्थ आते और श्रीहनुमानजी के सम्मुख बैठकर हनुमानचालीसा का पाठ किया करते थे।

उस मंदिर में एक साधु सेवा-पूजा किया करता था। न जाने उससे क्या अपराध बन गया कि वह पागल हो गया। भगवत्-सेवा करने के लिये पुजारी रखे जाते हैं, किन्तु अधिकांश पुजारी सेवा तो नाम-मात्र को लोक-दिखावे के लिये ही करते हैं, प्रेम का अभाव ही रहता है। यहाँ तक कि मौज से खूब खाते-पीते अनेक भोगों की ओर आकर्षित हो जाते हैं। इसीलिये आवश्यक है कि नैष्टिक ब्रह्मचारी को ही श्रीहनुमानजी की सेवा का अधिकार दिया जाय।

जब वह पुजारी साधु पागल हो गया तब उस ग्राम का नंबरदार दूसरा साधु खोज कर ले आया। वह साधु भी कुछ

दिनों बाद पागल हो गया। इस प्रकार क्रमशः वह नंबरदार चार साधुओं को लाया, परन्तु वे सब-के-सब पागल हो गये।

पौंडी से कुछ दूर पर एक संत-आश्रम था। वहाँ पर दो प्रतिष्ठित संत-नृसिंहदासजी और सेवादासजी रहते थे। उनके पास जाकर नंबरदार ने सारी कथा कह सुनाई। नृसिंहदास जी ने कहा—"हमारे शिष्य को ले जाओ। यह बड़ा कर्म-काण्डी है। इसके रहने से कोई विघ्न नहीं हो सकता। तुम निश्चिन्त हो जाओगे।"

नृसिंहदासजी का शिष्य-साधु बड़े गर्व के साथ नंबरदार के साथ आकर मंदिर में सेवा-पूजा करने लगा। दो महीने तक कोई विघ्न नहीं हुआ। दो महीने बाद एक दिन वह साधु मन्दिर की छत पर चढ़कर कलश पोछने लगा। उसी समय वह अकस्मात् तालाब में जा गिरा।

प्रातः काल का समय था। बहुत से लोग तालाब में स्नान कर रहे थे। मन्दिर से बीस हाथ की दूरी पर सरोवर था। उसी सरोवर में सहसा वह साधु आकर ऐसे गिरा जैसे किसी ने उसे फेंक दिया हो। आश्चर्य करते हुए सब लोगों ने साधु को बाहर निकाला। साधु के मुख से खून बह रहा था। मूर्छित साधु को लेकर लोग उसके गुरु नृसिंहदासजी के पास गये। बहुत यत्न करने पर चौबीस घंटे बाद उसे होश आये। उस दिन से साधु ने सेवा-पूजा करने से इनकार कर दिया। यह दशा देखकर नंबरदार को बड़ा दुःख हुआ। वह चिन्ता में सो

गया। रात्रि में स्वप्न में श्रीहनुमानजी ने उससे कहा—"मेरी सेवा पूजा के लिये कोई साधु मत लाओ। इसी ग्राम में पंडित रामलालजी रहते हैं। वे बड़े भक्त हैं। उनसे कहो कि वे अपने पुत्र सहित हमारे मंदिर में रहें और सेवा करें।"

नम्बरदार को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। प्रातःकाल वह आया और पंडित रामलालजी के चरणों में पड़कर सारा हाल सुना दिया। पंडितजी ने श्रीहनुमानजी की आज्ञा शिरोधार्य की और अपने पुत्र तथा पुत्री के सहित मन्दिर में निवास करने लगे। उस दिन से मंदिर में अद्भुत दिव्यता छा गई। सुन्दर सेवा होने लगी और दूर-दूर से दर्शनार्थी आने लगे। मंदिर में खूब आमदनी भी होने लगी।

कन्या सयानी हो गई थी। पंडित रामलालजी ने सुन्दर वर खोजकर उसकी भी शादी कर दी। फिर पुत्र धनुषधारी का यज्ञोपवीत-संस्कार बड़ी धूम-धाम से किया। यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् संस्कृत पढ़ाने लगे। कुछ ही दिनों में पिता ने रामायण का एक काण्ड मात्राओं का बोध कराते हुए पढ़ा दिया।

—:०:—

अनुष्ठान और दीक्षा

मुख दग्धं परान्ने च करौ दग्धौ प्रतिग्रहात् ।
मनो दग्धं परस्त्रीणां कथं सिद्धिर्वरानने ॥

अर्थात्—"जप में तीन सहायक हैं—मुख, हाथ और मन। मुख तो दूसरों का अन्न खाने से जल गया है तथा हाथ दान लेते-लेते जल रहे हैं और मन स्त्रियों के चिन्तन से जल रहा है, फिर महामंत्रों की सिद्धि किस प्रकार हो।"

आजकल प्रायः ऐसा ही देखने में आ रहा है। कलिकाल के प्रभाव से अनुष्ठान करनेवाले, नाम-जप-साधन करनेवाले सज्जनों का मन निरन्तर कामिनी-कांचन के चिन्तन में ही लगा रहता है। कहावत है—

जैसा अन्न वैसा मन; और जैसा संग वैसा रंग।

पंडित रामलालजो अब स्वच्छन्द होकर अपने पुत्र को विद्यानिधान बनाने की चेष्टा करने लगे। अपनी कन्याओं का विवाह कर ही दिया था। पत्नी परलोक सिधार चुकी थी। केवल पुत्र धनुषधारी को ही सब प्रकार से सर्वगुणसम्पन्न बनाना ही उनका जीवनोद्देश्य था।

एक बार पंडितजी के निकट-सम्बन्धी सज्जन के यहाँ पुत्र का विवाह था। उसने धनुषधारो को बारात में ले जाने के

लिये बड़ा आग्रह किया। उसकी प्रार्थना स्वीकार कर पंडितजी ने पुत्र को बारात में जाने की आज्ञा दे दी। जब धनुषधारीजी बारात में चले गये, उसके दूसरे दिन एक महात्मा पंडित रामलालजी के पास आये और पूछने लगे—"आपके पुत्र धनुषधारी कहाँ हैं?" पंडितजी ने कहा—"वह तो बारात में गये हैं।" महात्माजी ने कहा—"अच्छा, यदि वे बारात में गये हैं तो आपको ही मैं एक प्रज्ञावर्द्धन स्तोत्र बतलाये जाता हूँ, जब वह आवें तो उनको आप ही बता देना।

ऐसा कहकर महात्माजी ने प्रज्ञावर्द्धन स्तोत्र बतलाकर उसकी सम्पूर्ण विधि भी बता दी तथा एक गीता की पुस्तक भी पाठ करने के लिये दे गये।

बारात से लौटकर जब धनुषधारीजी आये तब पंडितजी ने महात्माजी का आगमन बताकर स्तोत्र-विधि का रहस्य समझा दिया। यह सुनते ही धनुषधारीजी समझ गये कि वे महात्माजी और कोई नहीं, वही गुरुदेव होंगे, जिन्होंने जंगल में मुझे दर्शन दिये थे। वे सोचने लगे—मैं उनके दर्शन न कर सका। मैं बारात* में क्यों गया? मेरा बड़ा दुर्भाग्य है। ऐसा विचारते हुए बार-बार विकल होने लगे।

---

* बारात में जाने से दोष भी होता है। श्री महाराजजी ने एक बार मुझसे यह भी कहा था—"बारातों में जाने से आजकल प्रायः विषयी पुरुषों का संसर्ग होता है। उनके खानपान, सहवास से वासनाएँ बढ़ती हैं। इसलिये ऐसी एक बारात में जाने से सौ तीर्थों का पुण्य नाश हो जाता है।"

तदनन्तर आज्ञा शिरोधार्य करके प्रज्ञावर्धन स्तोत्र का अनुष्ठान प्रारम्भ किया। उन्होंने उस स्तोत्र का अनुष्ठान बड़ी तत्परता के साथ किया। अनुष्ठान के समाप्त होने पर एक विलक्षण चमत्कार हुआ। जिस श्लोक को और जिस ग्रंथ को धनुषधारीजी पढ़ते वह तत्काल कण्ठ हो जाता। बुद्धि का ऐसा विलक्षण विकाश हुआ कि बड़े-बड़े नैयायिक भी आश्चर्य करने लगे।

दैवयोग से उन्हीं दिनों, विक्रमी संवत् १९३२ में, धनुषधारी के पिता पंडित रामलालजी ने योगियों के सदृश पद्मासन से बैठकर ब्रह्माण्डभेदन द्वारा अपने शरीर को त्याग कर साकेत-वास प्राप्त किया। इस समय श्री धनुषधारीजी की आयु २७ साल की थी। वे सुयोग्य विद्वान् नवयुवक थे। अपने पिता का अन्तिम कृत्य बड़े समारोह के साथ किया।

इधर पंडित धनुषधारी को अत्यन्त सुन्दर और सर्वगुण-सम्पन्न देखकर दूर-दूर से विप्रवृन्द आ-आ कर इनको विवाह के लिय राजी करने लगे। पंडित धनुषधारीजी के हृदय में बाल-ब्रह्मचारी रहने की दृढ़ भावना थी। इसलिये उन्होंने ब्राह्मणों से स्पष्ट कह दिया कि मैं विबाह नहीं करूँगा। परन्तु, जब इन्होंने साफ इन्कार कर दिया तो इनके सम्बन्धी-गण आ-आ कर इन्हें समझाने-बुझाने लगे।

अत्यंत परेशान होकर इन्होंने काशी में जाकर विद्याध्ययन करने का विचार किया। वहाँ पर जाने के पहले 'इस मन्दिर

की सेवा-पूजा कौन करेगा ?' यह चिन्ता सामने आ खड़ी हुई। इतने में धनुषधारीजी के एक मित्र आ गये। उनसे इन्होंने सारा हाल कह सुनाया। वे मित्र बोले—"यहाँ से कुछ मीलों की दूरी पर हथलेवा एक ग्राम है। वहाँ पर श्री रामवचन-दासजी नाम के एक बड़े प्रसिद्ध महात्मा आजकल निवास करते हैं। वे यदि चाहें तो इस स्थान को सँभाल सकते हैं।

श्री धनुषधारीजी ने यह सुनते ही एक सेवक उनको बुलाने के लिये भेजा। वे महात्मा रामवचनदासजी महाराज सेवक की विनय स्वीकार कर चले आये। वे मुख से श्रीसीताराम श्रीसीताराम रट रहे थे। उनको देखते ही धनुषधारीजी को बड़ी श्रद्धा हुई, वे चरणों में पड़ गये और मंदिर तत्काल उनको समर्पण कर दिया। महात्माजी ने बिना कुछ कहे-सुने स्वीकार कर लिया मानो वे पहले ही से सब कुछ जानते हों।

काशी जाने के लिये पंडित धनुषधारीजी ने मुहूर्त पूछा, एक ज्योतिषी ने बतलाया कि दस दिन के भीतर कोई मुहूर्त नहीं बनता, दस दिन बाद आप जा सकते हैं। श्री धनुषधारीजी ने मंदिर महात्माजी को सौंप दिया था, इसलिये नम्बरदार के मकान में जाकर आसन लगाया। किन्तु, महात्मा राम-वचनदासजी को यह अच्छा नहीं लगा। वे स्वयं गये और बोले—'जब तक आप काशी न जायँ तब तक मन्दिर में ही रहें।" इस प्रकार आग्रह करके उनको मंदिर में लिवा लाये।

श्री धनुषधारीजी ने महात्माजी के सत्संग में नौ दिन व्यतीत

किये। जब दसवाँ दिन आया तब उन्होंने महात्मा श्री राम-वचनदासजी के पास आकर काशी जाने के लिये आज्ञा माँगी। महात्माजी ने पूछा—"आप काशी किस लिये जा रहे हैं ?" श्री धनुषधारीजी ने उत्तर दिया—"विद्याध्ययन के लिये।"

महात्माजी—"विद्याध्ययन के लिये जाओ, बड़ी सुन्दर बात है, किन्तु केवल विद्या में ही जीवन मत व्यतीत करना। बिना भगवत्प्राप्ति के विद्वान् लोग भी जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहते हैं।"

धनुषधारीजी—"क्या विद्या से जन्म-मरण नहीं छूटता ?"

महात्माजी—"विद्याध्ययन से माया-जीव तथा ईश्वर का ज्ञान अवश्य होता है, किन्तु कोरे ज्ञान से ही काम नहीं चलता, इष्ट-प्राप्ति के लिये साधन करना पड़ता है। जैसे, किसी ने जान लिया कि भोजन से भूख मिट जाती है, परन्तु जान लेने ही से भूख नहीं मिटती, भोजन के लिये उद्योग करके भोजन करेगा तभी भूख नाश होगी।"

धनुषधारीजी—"आपके वाक्य मेरे हृदय में बड़ा प्रभाव डाल रहे हैं। किन्तु मेरे मन की शंका पूर्णतः दूर नहीं हुई। कृपा कर यह बतलाइये कि यदि कोई विद्याध्ययन बिलकुल न करे और भजन-साधन करना प्रारम्भ कर दे, तो क्या बिना विद्या के उसे ज्ञान हो सकता है ?"

महात्माजी—"हाँ, हो सकता है। भक्त ध्रुव पाँच वर्ष के बालक थे। उन्होंने भगवान् के दर्शनों के लिये ६ महीने तप

किया। जब भगनान् प्रकट हुए तब ध्रुव को ठीक बोलना भी नहीं आता था। सोचने लगे—भगवान् की स्तुति कैसे करें ? उस समय भगवान् ने बालक ध्रुव के कपोल पर अपना दिव्य शंख छुआ दिया; बस ध्रुव के मुख से धारा प्रवाह देव-वाणी निकलने लगी। वेद-शास्त्र सब कंठस्थ हो गये। इसलिये करनी ही सार है। महात्मा कबीरदासजी ने कहा है—

"पोथी पढ़ै सो बेटा मेरा, कथनी कथै सो नाती।
करनी करै सो गुरू हमारा, हम करनी के साथी।"

इस मार्मिक उपदेश को सुनकर श्री धनुषधारीजी के मन में नाना प्रकार की तरंगे उठने लगीं। बड़ी देर तक सोच-बिचार करने के पश्चात् बोले—"महात्मन्! अब भी मेरा मन कुछ निश्चय नहीं कर सका कि क्या करना चाहिये। इसलिये व्याकुलता बढ़ती जा रही है।"

महात्मा श्री रामवचनदासजी ने हँसते हुए धनुषधारीजी के मस्तक पर हाथ रख दिया। धनुषधारीजी को तत्क्षण समाधि लग गई। ध्यान में उन्होंने देखा कि दरबार लगा हुआ है। बड़े-बड़े महर्षि बैठे हुए हैं। भगवान् के दिव्य दरबार की शोभा देखकर वे आनन्द में भर गये। उसी समय श्रीहनुमानजी ने पास आकर कहा—"तुम काशी मत जाओ। महात्मा रामवचनदासजी भगवान् की इच्छा से ही तुम्हारे पास आये हैं—तुम इनसे ही गुरु-दीक्षा ग्रहण करो और यहीं साधन प्रारम्भ करो।"

नेत्र खुलने पर श्री धनुषधारीजी को बडा आश्चर्य हुआ। मानो उनका नवीन जन्म हुआ हो। उन्हें सारा संसार और ही तरह का प्रतीत होने लगा। महात्माजी के चरणों में पड़कर श्री धनुषधारीजी बारंबार दीक्षा के लिये प्रार्थना करने लगे। महात्माजी ने बहुत समझाया और दीक्षा देना स्वीकार नहीं किया। तब धनुषधारीजी बालकों की तरह रोने लगे। यह देखकर परम करुणामय महात्माजी ने दीक्षा देना स्वीकार कर लिया।

विक्रमी सं० १९३३ चैत्र मास शुक्लपक्ष की ९ अर्थात् श्रीरामनौमी के दिन प्रातःकाल महात्मा श्री रामवचनदासजी ने श्री धनुषधारीजी को विधिपूर्वक श्रीराममंत्रराज की दीक्षा प्रदान की। दीक्षा के प्रभाव से तत्काल दिव्य ज्ञानरूपी सूर्योदय हो गया और हृदयरूपी कमल प्रफुल्लित हो गया।

गुरुदेव की सेवा में रहकर उनकी आज्ञा से साधन करने लगे। राजयोग का अभ्यास—ध्यान, धारणा, समाधि, जप, अनुष्ठान आदि साधन सुचारु रूप से करने लगे। दिनोंदिन उनका तेज बढ़ता जाता था। अन्तरात्मा का प्रकाश बाहर प्रकट होने लगा। इस प्रकार कुछ दिनों तक साधन करने पर श्री धनुषधारीजी के हृदय में प्रबल वैराग्य उदय हुआ। उधर सम्बन्धीगण इनके विवाह की तैयारियाँ करने लगे। नित्य नये देखनेवाले आते और नाना प्रकार के प्रलोभन दिखाकर इनको लुभाने की चेष्टाएँ करते।

श्री धनुषधारीजी ने सोचा—यदि विवाह हो गया तो मैं बंधन में पड़ जाऊँगा और फिर गृह-जाल से निकलना असंभव हो जायगा। इसलिये अभी से चेत जाना अच्छा है। आग लग जाने पर पानी के लिये कूप खोद लेंगे, यह विचार मूर्खता है। आग लगने से पहले ही कूप खोद लेना चाहिये। इस प्रकार निश्चय करके एक दिन श्रीगुरुदेव के पास आकर कहने लगे—"प्रभो! मैं गृहस्थाश्रम के क्लेशों का अनुभव कर चुका हूँ। नित्य देखता हूँ, मेरे पड़ोसी बड़ी दुर्दशा भोगते हैं। इसलिये मैं चाहता हूँ कि आप मुझे साधु बना दें। नहीं तो सब लोग मेरा विवाह कर मुझे मायाजाल में फँसा देंगे।"

महात्माजी ने कहा—"साधु-धर्म का निर्वाह करना बड़ा कठिन है, इसलिये अभी मैं वैराग्य का मंत्र देकर विरक्त मार्ग का रहस्य नहीं बताना चाहता। यदि तुम्हारी प्रबल उत्कंठा है तो मुझे पहले यों ही साधुता की नकल करके दिखलाओ कि किस प्रकार से तुम साधु-धर्म निर्वाह कर सकते हो। जब मैं समझ लूँगा कि तुम 'पास' हो गये तो मैं स्वयं ही तुम्हें विरक्त बना दूँगा।

गुरुदेव की आज्ञा से श्री धनुषधारीजी ने अपने-आप साधुओं का-सा वेष बना लिया और जैसे गुरुदेव साधु-धर्म का पालन करते थे वैसे ही वैष्णवता के सम्पूर्ण अंगों का निर्वाह करने लगे और ग्राम से कुछ दूर पर एक स्थान में ऐसे आसन जमाकर बैठ गये, जैसे कोई तीर्थ भ्रमण करके आया हुआ अपरिचित संत अलग आसन लगाता है।

उधर ग्राम में यह बात बिजली की तरह फैल गई कि श्री पंडित धनुषधारीजी आज बाबाजी बन गये। लोगों ने समझा कि महात्माजी ने बहकाकर उन्हें साधु बना लिया है। धनुषधारीजी के सम्बन्धीगण और ग्रामवासी आकर महात्माजी को उलटी-सीधी सुनाने लगे; बोले—"आपको हमलोग अच्छे महात्मा समझते थे, किन्तु आपने हमलोगों से बिना पूछे ही धनुषधारी को साधु बना लिया। आपको ऐसा खोटा निन्दनीय कार्य नहीं करना चाहिये। आप एक विप्र का वंश-नाश करना चाहते हैं, वह कभी नहीं हो सकता।" इस प्रकार सब लोग बकने लगे। तब उत्तेजित जनता को शान्त करते हुए महात्माजी ने कहा—"आपलोग धैर्य धारण करें। इस प्रकार बिना सोचे-समझे कुछ नहीं कहना चाहिये। लो, हम अभी तुम्हारे धनुषधारी को बुलाकर तुमलोगों को सौंप देते हैं।"

ऐसा कहकर उन्होंने अपना एक शिष्य भेजा। उसने शीघ्रता से जाकर धनुषधारीजी को सारा समाचार सुना दिया। सुनते ही उन्होंने अपने सारे शरीर पर विभूति रमा ली और शीघ्रता से आकर अपने सगे-सम्बन्धियों से कहने लगे—"आपलोगों ने हमारे गुरुदेव को क्यों दोष लगाया है? मैं स्वयं अपनी इच्छा से साधु होना चाहता हूँ। साधु होना क्या कोई बुरा कार्य है? तुमलोगों की बुद्धि को धिक्कार है कि झूठ को सच और सच को झूठ समझ रहे हो। तुमलोगों ने समझा है कि हमारे पिता का वंश हमारे साधु होने से नाश

हो जायगा। यह तुम्हारा भ्रम है। हमारे पिता ही नहीं, पिता के सब पितर तर जायेंगे। मैं भक्ति का प्रचार कर लाखों को तारूँगा। मेरे जो लाखों शिष्य होंगे, वही मेरी संतानें होंगी। मेरा और मेरे पिता का नाम संसार में अजर-अमर हो जायगा। मेरे साधु होने से तुमलोग भी पावन बन जाओगे। यह पौंढी ग्राम भी इतिहास के ग्रन्थों में लिखा जायेगा।"

इस प्रकार आवेश में धनुषधारीजी कहते चले जाते थे और भयभीत होकर सब लोग काँप रहे थे। सब मौन थे, किसी के मुख से कोई शब्द नहीं निकलता था। अन्त में सब लोग धनुषधारीजी का प्रबल वैराग्य देखकर चरणों में पड़ गये और अपने अपराध के लिये क्षमा याचना करने लगे। बहुत प्रार्थना करने पर धनुषधारीजी ने कहा—"तुमलोगों ने मेरे गुरुदेव से जो कटु-वचन कहा है, वह मैं कदापि क्षमा नहीं कर सकता, उसका फल तुमलोगों को अवश्य भोगना पड़ेगा। हाँ, यदि गुरुदेव स्वयं क्षमा कर दें तो तुम्हारा कल्याण हो सकता है।"

यह सुनते ही सब लोग महात्माजी के चरणों में पड़कर अपना अपराध क्षमा कराने लगे। दयालु महात्माजी ने उन सब का अपराध क्षमा कर दिया। सब लोग आनन्दित होकर अपने-अपने घरों को चले आये।

इसके पश्चात् श्री धनुषधारीजी की बहिन के श्वसुर पंडित वेणीरामजी ने आकर बहुत समझाया, किन्तु धनुषधारीजी ने किसी प्रकार भी गृहस्थाश्रम में रहना स्वीकार

नहीं किया। तब अत्यन्त उदास होकर पंडित वेणीरामजी महाराज श्री रामवचनदासजी के पास आये और कहने लगे कि आप यदि चाहें तो हमारे समधी पंडित रामलालजी का घर न बिगड़े। यदि धनुषधारीजी की इच्छा साधु होने की है तो बड़ी सुन्दर बात है, साधु होना सौभाग्य से होता है। किन्तु वे विवाह करके एक पुत्र अपना वंश चलाने के लिये छोड़ जायँ। यही हमारी प्रार्थना है।

महात्मा रामबचनदासजी ने कहा—"पंडितजी महाराज! मैं एक गुप्त बात आप से बताता हूँ। वह यह है—"धनुषधारी साधारण मनुष्य नहीं हैं। यह बाल-ब्रह्मचारी ही रहना चाहते हैं। इनका अवतार जीवों के उद्धार लिये ही हुआ है। ये संसार में भक्ति का प्रचार करेंगे। हमारे काका गुरु सर्वज्ञ महात्मा हैं। वे परम तपस्वी और सिद्ध महापुरुष हैं। उन्होंने ही हमें धनुषधारीजी का स्वरूप बतलाया था तथा उन्हीं की आज्ञा से हम हथलेवा ग्राम में आकर धनुषधारीजी से मिलने की इच्छा से रहने लगे थे कि अकस्मात् इनका भेजा आदमी हमें बुलाने गया और मंदिर सँभालने की प्रार्थना करने लगा। मैं अपने काका गुरु की प्रेरणा से इनके लिये ही यहाँ पर रह रहा हूँ। यह जो कुछ करें करने दो, यह स्वतंत्र हैं।"

महात्माजी की बात सुनकर पंडित वेणीरामजी की सारी शंका दूर हो गई। वे आनन्दित होकर चले गये और सारे

ग्राम में धनुषधारीजी की महिमा वर्णन करके सुनाई। सुनकर सबको संतोष हो गया।

वि० संवत् १९३५ में महात्मा श्री रामवचनदासजी से श्री धनुषधारीजी ने निवृत्ति मार्ग की दीक्षा ली। निवृत्ति-संस्कार कराकर विशुद्ध वैष्णव वेष धारण किया। साधु वेष में हमारे चरित्रनायक बड़े ही सुन्दर प्रतीत होते थे। ग्राम-वासियों ने धूम-धाम से उत्सव मनाया और हवन के पश्चात् प्रसाद बाँटा गया।

उसी समय महात्माजी ने श्री धनुषधारीजी का दूसरा नाम रक्खा—"श्रीरामवल्लभाशरण।" फिर संतों के नियमों को समझाकर दिनचर्या बताई। आसन सिद्ध कराकर गुप्त जप के रहस्य भी बतलाये। हमारे चरित्रनायक विधिवत् गुप्त जप का साधन करने लगे।

—:०:—

काया-कल्प

एक दिन महात्माजी आनन्दपूर्वक पुराणों की कथा श्रवण करा रहे थे और हमारे चरित्रनायक मन लगाकर सुन रहे थे, उसी समय दो विद्यार्थी बालक आये और उत्सुकता से कुछ कहने की चेष्टा करने लगे। महात्माजी ने उनसे आने का कारण पूछा। वे बोले—"महाराज! हमारे गुरुदेव ने काया-कल्प करने के लिये कुछ दिनों तक एक बूटी का सेवन किया जिससे उनका शरीर बहुत मोटा हो गया। जब वे चलने-फिरने से विवश हो गये तब उन्होंने पर्वत की गुफा में जाकर आसन लगाया और हमलोगों से कहा कि—तुम लोग नित्य-प्रति यह बूटी पिला जाया करो। अगर कोई उपद्रव आ जाय तो महात्मा रामवचनदासजी को जाकर बुला लाना। हमलोगों ने उनको कुछ दिन बूटी पिलाई। किन्तु अब उनका शरीर इतना मोटा और भयंकर हो गया है कि हमसे देखा भी नहीं जाता। इसलिये आप चलने की कृपा करें।"

महात्माजी यह सुनते ही तत्काल साथ में अपने शिष्य को लेकर चल दिये और गुफा में जाकर संत के शरीर को

देखा—शरीर बहुत भयंकर हो गया था, तथा फूट की तरह चारों ओर से फट रहा था। उस शरीर के अन्दर एक और किशोर मूर्त्ति दर्शित हो रही थी। किन्तु किसी प्रकार की चेष्टा न देखकर महात्माजी ने कह दिया—"अब तो यह संत परलोक सिधार गये। दैव की गति कुछ समझ में नहीं आती।"

हमारे चरित्रनायक (श्री रामवल्लभाशरण जी महाराज) को यह दृश्य देखकर बड़ा आश्चर्य एवं क्लेश हुआ। उन्होंने गुरुदेव से पूछा—"भगवन्! काया-कल्प के लिये जो औषधियाँ शास्त्रों में लिखी हैं क्या वे सब झूठी हैं? यदि झूठी नहीं हैं तो फिर इन संतजी के प्राण क्यों गये?" महात्माजी ने कहा—"वत्स! इसमें कोई त्रुटि अवश्य हुई है।"

तदनन्तर उन्होंने उन दोनों बालकों से पूछा—"सत्य-सत्य बतलाओ, तुमने इनको आज तक बराबर दवा पिलाई है या नहीं?" यह सुनकर उन बालकों ने कहा—"महाराज! पहले तो हम दवा पिलाते रहे, किन्तु तीन दिनों से इनका शरीर बहुत भयानक हो गया है। भय के कारण तीन दिनों से हम बूटी पिलाने नहीं आ सके। जब आते तब इनका शरीर फटता देखकर हमारा हृदय काँप उठता था।"

यह सुनते ही महात्माजी ने कहा—"शोक! शोक! यदि तीन दिन दवा इनको और मिल गई होती तो इनका पहला वृद्ध शरीर फट-फट कर आपही निकल जाता और भीतर जो

किशोरदेह बन गया था उसमें प्राण प्रविष्ट हो जाते। अब क्या हो सकता है, प्राण तो निकल गये ?"

हमारे चरित्रनायक ने फिर पूछा—"गुरुदेव ! क्या यह संत आपसे परिचित थे।"

महात्माजी—"हाँ, इनका-हमारा बहुत साथ रहा है। इन्होंने मुझसे ही यह काया-कल्प-प्रयोग सीखा था। किन्तु इन्होंने मुझे बिना सूचना दिये ही काया-कल्प प्रारम्भ कर दिया। यदि यह मुझे सूचना दे देते तो मैं स्वयं सब देख-रेख रखता, ऐसी दुर्दशा नहीं होने पाती।"

फिर महात्माजी ने संत के शरीर के फटे हुए अंगों को हटाकर भीतर की देह देखी। वह शरीर अत्यन्त सुकुमार कामदेव के सदृश सुन्दर था, उसकी परीक्षा करके महात्माजी निराश हो गये।

हमारे चरित्रनायक ने कौतूहलवश पूछा—"भगवन् ! केवल बूटी खाने से ही ऐसा सुन्दर शरीर कैसे बन गया, मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है।"

महात्माजी—"वत्स ! औषधियों में बड़ी शक्ति है। मुर्दे को जिला देना, पत्थर को गला देना आदि अनेकों चमत्कार इनमें भरे हैं, किन्तु बूटियों के पहचानने वाले ऋषि आजकल नहीं हैं। इसमें आश्चर्य ही क्या है, बूटी का प्रभाव प्रत्यक्ष देख लो। बूटियों से ही इनका नवीन शरीर बन गया है।"

तदनन्तर महात्माजी ने उन संत का अन्तिम संस्कार

करवाया और उनका स्थान संत को सौंपकर अपने मंदिर में चले आये। इस प्रकार नित्य नये कौतुक होते ही रहते थे। महात्माजी महान् सिद्ध पुरुष थे, उनके नित्य नवीन चरित्रों का कोई कहाँ तक वर्णन कर सकेगा।

कभी-कभी रात्रि में उनके पास दिव्य संत और देवगण आते थे। उनका संवाद सुनकर हमारे चरित्रनायक बहुत आनन्दित होते थे।

—:०:—

देव-दर्शन

चित्रकूट में एक प्रसिद्ध महात्मा सुखरामदासजी रहते थे। वे बड़े प्रतापी और मंत्र-रहस्यों के अद्भुत ज्ञाता थे। दैवयोग से विचरण करते हुए पौंडी ग्राम में आ गये। महात्मा श्री रामवचनदासजी से उनका स्नेह था। एक दिन उन्होंने प्रसन्न होकर हमारे चरित्रनायक को एक अनुष्ठान बतलाया, वह ११ दिन का प्रयोग था। हमारे चरित्रनायक ने प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। जब आठ दिन जप करते हो गये तब नवे दिन रात्रि में जप करते समय एक कुत्ता इनके सामने प्रकट हो गया। वह जोरों से घुर्राने लगा, किन्तु यह जरा भी भयभोत नहीं हुए। अन्त में वह कुत्ता अदृश्य हो गया। दसवें दिन एक भयंकर सर्प दौड़ता हुआ इनके पास आ गया, किन्तु यह नहीं उठे, वह सर्प थोड़ी देर तक चारों ओर घुमता रहा, फिर चला गया।

ग्यारहवें दिन चारों ओर से इतनी चींटियाँ आकर इनके शरीर पर चढ़ने लगीं कि ये घबड़ा उठे, किन्तु उठे नहीं। थोड़ी देर में वे चींटियाँ भी अदृश्य हो गईं और जप के समाप्त होते ही भीमाकार बटुक भैरव प्रकट हो गये। भैरव ने कहा–"आपकी जो अभिलाषा हो, शीघ्र वरदान माँग लें।"

चरित्रनायक ने कहा—"मुझे केवल श्रीराम-भक्ति का वर-दान दें और श्रीराम-भक्ति प्रचार करने की शक्ति प्रदान करें।"

'एवमस्तु' कहकर तथा प्रचार में सर्वदा सहायता करने का वचन देकर वटुकदेव अदृश्य हो गये।

प्रातःकाल भैरव-दर्शन का एवं वरदान का सम्पूर्ण चरित्र अपने गुरुदेव तथा श्री रामसुखदासजी से कह सुनाया। सुनकर सब बड़े प्रसन्न हुए।

अपने शिष्य का प्रयोग सफल होते देखकर महात्माजी ने अपना सिद्ध किया हुआ श्रीहनुमान-पताका नामक प्रयोग बतला दिया। उस प्रयोग से श्रीहनुमानजी के दर्शन अवश्य होते हैं। किन्तु, अनुष्ठान की समाप्ति तक शरीर को कोई स्पर्श न करे, नहीं तो बड़े-बड़े विघ्न उपस्थित हो जाते हैं।

भादों का सुन्दर महीना था। हनुमानजी के दर्शनों के लिये प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। एक कुटी बिलकुल एकान्त में थी, उसमें निरन्तर रहकर जप प्रारम्भ किया। उसी में उनके लिये जल-फल इत्यादि पहुँचा दिया जाता था। दिन-रात उस कुटी में बंद रहते थे। किसी की दृष्टि भी उनपर नहीं पड़ सके ऐसी बिधि से रात्रि में ही नित्य-कृत्य के लिये निकलते थे।

भादों के महीने में जन्माष्टमी पर ग्राम का नम्बरदार उत्सव मनाया करता था। मंदिर से भगवान् की सवारी नम्बरदार के भवन को जाती थी और अन्य-अन्य ग्रामों के लोगों की भीड़ दर्शनार्थ पहुँचती थी। उस महोत्सव में सहस्रों

नरनारी एकत्र होते थे। उस दिन नम्बरदार आकर महात्माजी से पूछने लगा—"महाराज! आपके शिष्यजी कहाँ हैं? मैंने उनको बहुत दिनों से नहीं देखा। प्रतिवर्ष की तरह आज भी सवारी के साथ वे मेरे भवन में पधारने की कृपा करें।"

महात्माजी ने नम्बरदार को बहुत समझाया कि आजकल वह अनुष्ठान कर रहे हैं, बाहर नहीं निकल सकते; किन्तु सब ग्रामवासी आकर उनके चरणों में पड़ गये और विवश करने लगे। अन्त में लाचार होकर महात्माजी ने कहा—"आपलोगों के आग्रह से मै उन्हें बुलाता हूँ, किन्तु उनको कोई स्पर्श न करे, नहीं तो बड़ा दोष होगा।" नम्बरदार ने यह शर्त स्वोकार कर ली। महात्माजो की आज्ञा से चरित्र-नायक अपनी एकान्त-कुटी से निकले। धूम-धाम से भगवान् का सिंहासन उधर मंदिर से निकल रहा था। इनको कुटी से निकलते देखकर सम्पूर्ण नर-नारियों की भीड़ इनकी ओर दौड़ पड़ी। सभी लोग इनको देखते ही जय-जयकार करने लगे। वह सब ग्रामवासी इनसे ऐसे प्रेम करते थे, जैसे अयोध्यावासी प्रजा भगवान् श्रीरामजी से।

नम्बरदार ने बहुत बचाने की चेष्टा की, किन्तु प्रेम-विह्वल जनता ने दौड़कर हमारे चरित्रनायक के चरण छूना प्रारम्भ कर दिया—लाख रोकने पर भी नहीं रुक सके। जब जनता ने उनको स्पर्श कर ही लिया, तब बेखटके वे भगवान् की सवारी के साथ सदा की भाँति चले गये।

मेले में इस वार भीड़ सब दिनों से चौगुनी हुई थी। नाना प्रकार के कौतुकी, गाने-बजानेवाले आये थे। हमारे चरित्र-नायक जब सवारी के साथ लौटकर आये तब सन्ध्या हो चुकी थी। लौटने पर मेले की भीड़ का सारा समाचार उन्होंने अपने गुरुदेव से कह सुनाया। वे आनन्दपूर्वक समाचार सुना ही रहे थे कि सहसा उनको बड़े जोरों से ज्वर चढ़ आया। वह ज्वर इतना प्रबल था कि इनको शरीर की सुधि भी नहीं रही।

महात्मा रामवचनदासजी ने कहा—"प्रयोग में स्पर्श करना दोष होता है, यह उसी का फल है। यह बड़ा भयंकर विघ्न हो गया।" ऐसा कहकर वे कुटी में ले गये। वहाँ उनको शयन करा दिया और आप श्रीहनुमानजी के मंदिर में जाकर सन्मुख बैठ, सन्ध्या से लेकर अर्द्ध रात्रि पर्यन्त विघ्न शान्ति के लिये जप करते रहे।

इधर अर्द्ध रात्रि के पश्चात् कुटी में श्रीहनुमानजी प्रकट हो गये और चरित्रनायक के मस्तक पर ज्योंही हाथ रक्खा कि सारी पीड़ा दूर हो गई। हर्षित होकर उठ बैठे। तब श्रीहनुमानजी बोले—"तुम्हारे गुरुदेव को बड़ा दुःख हुआ, इसलिये उनकी प्रार्थना से मुझे प्रकट होना पड़ा। तुम निर्भय होकर अब कल से पुनः अनुष्ठान प्रारम्भ करो।" इतना कहकर अन्तर्द्धान हो गये।

हमारे चरित्रनायक श्रीहनुमानजी के दर्शन करके

आनन्द-समुद्र में डूबने-उतराने लगे। जैसे शारदीय कमल प्रफुल्लित होता है वैसे ही उनका हृदय और मुख-कमल खिल उठा। वे आनन्द से उछलते हुए कूदते-फाँदते अपने गुरुदेव के पास गये। गुरुदेव बैठे हुए विघ्न-शान्ति के लिये जप कर रहे थे।

इनको आनन्द से प्रफुल्लित देखकर वे आश्चर्य करने लगे। तब इन्होंने श्री हनुमद्दर्शन का समाचार सुनाया। उसे सुन-कर महात्माजी भी परम प्रसन्नता से झूमने लगे।

दूसरे दिन से फिर अनुष्ठान प्रारम्भ किया गया और निर्विघ्न समाप्त हो गया। जिस दिन अनुष्ठान समाप्त हुआ उस दिन अर्द्ध रात्रि में फिर श्री हनुमानजी के दर्शन हुए। इन्होंने वरदान में केवल भक्ति-प्रचार की ही लालसा प्रकट की। हनुमानजी ने बहुत प्रलोभन दिया, किन्तु ऋद्धि-सिद्धि को नरकप्रद बतला कर इन्होंने केवल भक्ति माँगी। इससे प्रसन्न होकर श्रीहनुमानजी ने अपनी ओर से भगवान् की दिव्य लीलाओं में अनुराग होने का वरदान प्रदान किया।

—:●:—

तीर्थ-यात्रा

भवद्विधा भागवतास्तीर्थीभूताः स्वयं विभो।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तस्थेन गदाभृता॥

धर्मराज युधिष्ठिर ने महात्मा विदुर से एक बार कहा था—"हे स्वामिन् ! आपके सदृश परम भक्त स्वयं ही तीर्थ-स्वरूप हैं और तीर्थों को आपलोग ही तीर्थ बनाते फिरते हैं, क्योंकि आपके हृदय में साक्षात् भगवान् विराजमान् हैं।"

संतजन ही संसार को पावन कर सकते हैं। भगवान यदि समुद्र हैं तो संतजन मेघ हैं, भगवान यदि चंदनवन हैं तो संत समीर हैं। समुद्र जल से परिपूर्ण है, किन्तु वह जल कोई नहीं पीता, न उससे खेती हो हो सकती है। किन्तु मेघ जब उसी जल को लेकर यथायोग्य बरसाते हैं तो मोर-पपोहा, किसान ही क्या, सारा जगत् आनन्द की लहरें लेने लगता है। इसी प्रकार परमात्मा सब जगह विराजमान् हैं, किन्तु संतजनों के द्वारा ही परमात्मा का पता लगता है और शान्ति, ज्ञान, भक्ति, प्रेम आदि गुणों को जब वे संतजन बरसाते हैं, तब सारा संसार आनन्दित हो उठता है।

अयोध्या के उस समय प्रसिद्ध रामायणी महात्मा श्री रामदासजी तीर्थ-यात्रा के लिये निकले थे। वे अकेले ही यात्रा करते हुए पौंडी ग्राम में आ पहुँचे। उनको देखते ही

महात्मा श्री रामवचनदासजी ने उनका बड़ा सत्कार किया। हमारे चरित्रनायक ने भी उनके शील-स्वभाव को देखकर उनकी बड़ी सेवा की। श्री रामदासजी नित्य रामायण की कथा कहते थे और सन्ध्या समय सत्संग का बड़ा आनन्द रहता था। इसीलिये महात्माजी ने उनको रोक लिया। जब महीने भर से ऊपर हो गया, तब एक दिन श्री रामदासजी चित्रकूट, काशी आदि तीर्थों की शेष यात्रा के लिये जाने को उद्यत हुए। उसी समय जाकर उन्होंने महात्मा श्री रामवचनदासजी से जाने के लिये आज्ञा माँगी। उनको बड़ी कठिनता से महात्माजी ने जाने की आज्ञा दी। उसी समय हमारे चरित्रनायक भी गुरुदेव के चरणों में पड़कर कहने लगे— "प्रभो! आज मेरे हृदय में भी अभिलाषा जाग्रत हो उठी है कि मैं भी श्री रामदासजी के साथ चित्रकूट, काशी आदि तीर्थों की यात्रा कर आऊँ। क्योंकि ऐसा सुन्दर संग बार-बार नहीं मिलता। यदि आज्ञा हो तो……।"

संकोचवश आगे और कुछ नहीं कह सके। यह सुनकर श्री रामवचनदासजी महाराज ने तीर्थ-यात्रा के लिये सहर्ष आज्ञा दे दी। किन्तु चलते समय उनका भी हृदय भर आया। बोले—'तुम्हीं मेरे जीवन-आधार हो। तुम्हारी भक्ति स्मरण कर मैं बार-बार पुलकित हो जाता हूँ। तुम्हारे सदृश गुरु-भक्त संसार में विरले ही होते हैं। यद्यपि तुम्हें आँखों के आगे से

अलग करने में बड़ा दुःख होगा, किन्तु तुम्हारा जन्म लोक-कल्याण के लिये ही हुआ है। इसलिये रोकना भी नहीं चाहता।"

ऐसा कहते हुए तथा बार-बार प्रेमाश्रु बहाते हुए मस्तक सूँघकर आशीष प्रदान की तथा अनेकों गुप्त बातें समझाकर यात्रा के खर्च के लिये १००) भी दिये। गुरुदेव के चरणों में मस्तक रखकर बड़ी देर तक करुणारस नेत्रों से बहाते हुए चरित्रनायक अत्यंत विह्वल हो उठे। गुरुदेव के वियोग से विकल होते हुए आपने श्री रामदासजी के साथ तीर्थ-यात्रा के लिये प्रस्थान किया। चलते समय अनेकों शुभ शकुनों के दर्शन हुए।

चित्रकूट में आकर आनन्दपूर्वक प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थलों के दर्शन किये और संतों का सत्संग करते हुए विचरने लगे। श्रीहनुमानधारा पर पहुँचते ही चरित्रनायक की अपूर्व दशा हो गई। इष्टदेव के दर्शन करते हुए प्रेमावेश में आकर उछलने लगे। श्री रामदासजी ने बहुत सँभालने की चेष्टा की, किन्तु फिर भी वह मूर्छित होकर गिर पड़े। सावधान होकर फिर देवाङ्गना स्थान पर आये और तदनन्तर श्री कामदगिरि की परिक्रमा की।

जिस स्थान पर ठहरे थे, उसी स्थान में एक परम तपस्वी 'जपी' जी रहते थे। उनसे हमारे चरित्रनायक का बड़ा प्रेम हो गया। निरन्तर दिव्य अनुभवों की परस्पर चर्चा होती रहती। वह जपीजी नित्यप्रति अर्द्ध रात्रि में उठकर कहीं चले जाते थे। यह देखकर हमारे चरित्रनायक ने पूछा—"आप नित्य अर्द्ध रात्रि में किस स्थान पर चले जाते हैं? क्या आपको

यहां रात्रि में रहना पसन्द नहीं है ? यह सुनकर वे जपोजी मुस्कुराने लगे। विशेष आग्रह करने पर बोले—"मैं नित्य अर्द्ध रात्रि में किसी अलौकिक आनन्द को लूटने जाता हूँ। यदि आपकी इच्छा हो तो एक दिन आप भी चलिये।"

इतना सुनते ही ये उसी दिन चलने को तैयार हो गये। अर्द्ध रात्रि में जपीजी के साथ चल दिये। जपीजी निर्भय होकर चित्रकूट पर्वत की परिक्रमा करते हुए चले जा रहे थे। बीच में एक स्थल पर खड़े होकर पर्वत को एक गुफा की ओर इशारा करके बोले—"देखो ! यहाँ पर दिव्य-गान सुनाई देता है। ध्यान से सुनना और समझना।" ऐसा कहकर पर्वत के किनारे एक बिल दिखला दिया।

उस विवर में जब आपने कान लगाया तो उसमें ऐसा दिव्य संगीत सुन पड़ा कि आप आनन्द-समुद्र में निमग्न हो गये। उसमें अद्भुत-सरस बाजे बज रहे थे और मधुर ताल-स्वरयुक्त, कोकिल-कण्ठ कमनीय गान हो रहा था। साथ ही उसमें नूपुरों और किंकिणियों तथा कंकणों की कलित ध्वनि के सहित मनोरम नृत्य भी हो रहा था। ऐसा अनुपम गान संसार में कभी आपने सुना ही नहीं था। उसे सुनते समय अतुलित आनन्द हो रहा था। बहुत ध्यान देकर जब समझने की चेष्टा की तो मधुर-ध्वनि में गीतगोविन्द की अष्ट-पदी की तरह झलक प्रतीत हुई। थोड़ी देर में स्पष्ट सुन पड़ा-

विहरति रघुपतिः सरयू कूले।
पद्मराग चामीकर मरकत बद्ध विविध तरु मूले ॥१॥
सादर मज्जदमित युवती कुच कुंकुम पिंगल नीरे।
शमदमादि साधन विवेक वश मुनिजन संकुल तीरे ॥२॥
विलिखित मकर निशाकर दिनकर चञ्चल विशद पताके
दिव्यासन विशेष पूरित दूरी कृत दुरित विपाके ॥३॥
सारस जल कोयष्टि मरालक चक्र विजृम्भित नादे।
पङ्केरूह केदार विशोधन परिमल शमित विषादे ॥४॥
यातायात तुरङ्ग मतङ्गज करभ मनुज रथ याने।
दिशि-दिशि निज विश्राम काम वहु विरचित रुचिर विताने ॥५॥
राजदनेक लवङ्गलता लवली मुनि पादप चूते।
भ्राजित तुरग तरङ्ग विकाश लसत्तुलसादल पूते ॥६॥
देव गृहै रभितः स्फुरति प्राणवादिक मन्त्र विचारे।
ध्यान परायण सिद्ध समूह निराकृत विषय विकारे ॥७॥
श्री "जयदेव" कवेरुदितं सरयू सरि दुज्वल गानम्।
सर्वं सतामनिश भवतु प्रियदं सुखमोद निधानम् ॥८॥

इस गान को सुनकर महाराज को बड़ा आश्चर्य एवं आनन्द हुआ। कुछ रात्रि शेष रही तब जपीजी के साथ लौट आये। दूसरे दिन उसी नाद का अनुसन्धान करते-करते दिन बीता, जब रात्रि हुई तो जपीजी के साथ फिर गये और अत्यंत उत्कंठापूर्वक श्रवण लगाकर उस अलौकिक-मधुर-

मनोन्मादकारी गीत-सुधा का आस्वादन करने लगे। अत्यन्त प्रेम-भाव-भरी अष्टपदी सुन पड़ी—

रामवदनमति मजु विलोकय।
शारद कोटि शशिनमिव निर्मलमक्षि चकोरं रोपय ।।१।।
भृकुटी कुटिल धनुर्वलिनं नव कुंकुम तिलक ललाटम्।
सुहृदय हृदय विशोककरं करुणामय नयन विपाटम् ।।२।।
क्षीर पयोनिधि बीचि विनिन्दक बिषद मनोहर हासम्।
कुन्द कुसुम कमनीय लसद्दशनावलि किरण विकाशम् ।।३।।
नागलता रस राग धराधर पल्लव मय हृदि हासम्।
कीर सुखाकृति धीर सुगन्ध-समीरण नासा वासम् ।।४।।
नाना रत्न विचित्र हिरण्यम मुकुट विभाग मतीलम्।
मकराकार कनक कुण्डल युग चलन विभासि कपोलम् ।।५।।
कम्बु रुचिर तर कण्ठभृदम्बुद नील विजृम्भित केशम्।
रघुकुल कैरव कानन नियत विकाशक चारु विशेषम् ।।६।।
मञ्जुल मोद करं सुचिरं निज भक्त सतामनुकूलम्।
लोक चतुर्दश पालन दक्षमपक्ष विनाशमतूलम ।।७।।
श्रीजयदेव कवेरिदमुदयदि हरिचरणस्मृति सारम्।
सुखयतु साधु जनं सततं किल शमयतु विषय विकारम् ।।८।।

इस गान में भगवान् की विलक्षण झाँकी का वर्णन है। पहली अष्टपदी में "भगवान् श्रीरामजी परिकर सहित सरयू किनारे विहार कर रहे हैं, सरयू तट की शोभा का अपूर्व वर्णन है—सरयू जल अवध की मनोरम रमणियों के अंगों में

लगी हुई केशर से पीला हो रहा है, तथा तट पर मुनिजनों के आसन लगे हुए हैं, ध्वजायें फहरा रही हैं। सारस, हंस आदि जल के पक्षी कूज रहे हैं, पंक में पंकज खिले हुए हैं, तट पर वीथी में हाथी-घोड़े-रथ आदि जा रहे हैं, इधर-उधर बिश्राम के लिये लताओं के दिव्य मंडप बने हुए हैं, बड़े-बड़े वृक्ष और सुगंधित पुष्पोंवाली फुलवारियों की विचित्र शोभा है। कहीं-कहीं देव-मंदिर आमने-सामने बने हुए हैं।" दूसरी अष्टपदी में श्रीरामजी के रूप का बर्णन है—पुरवासी एक दूसरे से कहते हैं—

"देखो! श्री रामचन्द्र के मुख-चन्द्र की शोभा देखो। करोड़ों शरद्चन्द्रों के समान प्रकाशमान् इस मुख-कमल पर अपने नेत्रों को चकोर की तरह लगा दो। धनुष के सदृश भृकुटी है तथा ललाट पर कुंकुम का तिलक है, अपने प्रेमियों के हृदयों के शोक को दूर करनेवाले जिनके नेत्र करुणा से खिल रहे हैं। क्षीर सागर की लहर के समान जिनकी मुस्कान है तथा कुंद पुष्प के सदृश स्वेत दन्तावलियों से किरणें निकल रही हैं। नागलता के रस के रंग की तरह जिनके लाल अधरों पर हृदय की प्रसन्नता छा रही है। शुक की तरह सुन्दर नासिका से श्वास् अत्यन्त सुगंधित निकल रही है। नाना रत्नों से विभूषित स्वर्ण-मुकुट अतुलित शोभा दे रहा है तथा मकराकृत कुण्डल की कान्ति कपोलों पर छलक रही है। शंख की छटावाला कंठ और जलदवत् नील कान्तिवाले केश लहरा रहे हैं। रघुकुल-कुमुद को प्रफुल्लित

करनेवाला यह मुखचन्द्र मंगल मोद का निधान है तथा भक्तों पर सदा कृपा करनेवाला है।

इस भाव को समझते हुए श्री महाराजजी अपनी सुधि-बुधि भूल कर गान में तन्मय हो गये। इस प्रकार नित्य प्रति नवीन-नवीन गान सुनकर वह अनुपम आनन्द लूटने लगे।

एक दिन एक विचित्र लीला हुई। आप अकेले ही दिन में चित्रकूट-पर्वत की परिक्रमा करने चले गये। वर्षा के दिन थे। अकस्मात् बादल घिर आये और वर्षा होने लगी। श्री महाराजजी ने विचार किया कि इस पर्वत पर श्रीसीताराम जी विहार करते हैं—उनके चरणों की रज बहकर इन झरनों के द्वारा आ रही है। इसलिये इस पर्वत से गिरती हुई जल-धारा में स्नान करना चाहिये। प्रेम-भाव में विह्वल होकर स्नान करने लगे। इधर-उधर हरी-हरी लतायें थीं। जल के पक्षी कूज रहे थे। मयूरों की कुहक तथा बादलों की घनघोर गरजन बड़ी भली मालूम हो रही थी।

बड़े आनंदोत्साह से आप उस पर्वत से गिरती हुए जल धारा में स्नान करने लगे। बड़ी मौज से प्रेमोल्लास में भर कर स्नान करते हुए प्रसन्न हो रहे थे कि सहसा एक विशाल काय बानर आ गया। उस बानर ने इनका हाथ पकड़कर जलधारा से अलग खींच लिया। इनको उस बानर का यह कृत्य बड़ा खराब लगा, साथ ही आश्चर्य भी हुआ और उस बानर को ढीठ समझकर आप उसकी ओर टेढ़ी-टेढ़ी दृष्टि से

उसने अपने गृह में ले जाकर महाराज की बड़ी सेवा की। वह बड़भागी वैश्य नित्यप्रति २० साधुओं को भोजन कराकर तब भोजन करता था। उसको महाराजजी में अलौकिक चमत्कारों के दर्शन हुए तथा उसको महाराजजी पर अत्यंत श्रद्धा हो गई।

एक दिन उसने बड़े प्रेम से २० संतों के लिये कई प्रकार के व्यंजनों की पक्की रसोई बनवाई। लगभग १८ संत आकर पंगत में बैठ चुके थे। वह भक्त जानकीदास विचार कर रहा था कि यदि दो संत और आ जाते तो पंगत पूरी हो जाती। दैवयोग से उसी समय तीर्थ-भ्रमण के लिये निकली हुई ५० संतों की जमात आ गई। संकोचवश उस भक्त ने किसी से कुछ कहा नहीं, सबको दण्डवत-प्रणाम करने लगा। वह ५० संतों की जमात संतों की पंगत में बैठ गई।

भक्त जानकी दास शीघ्रता से दौड़कर हमारे चारत्रनायक के पास आया। सब समाचार सुनाकर कहने लगा—'आज लज्जा जा रही है। २० संतों की सामग्री बनी है, ७० मूर्त्तियों को किस प्रकार प्रसाद पवायें। लौटाते भी किसीको नहीं बनता।"

हमारे चरित्रनायक ने कहा—"तुम कोई चिन्ता मत करो। मैं स्वयं चलता हूँ। श्री किशोरीजी की कृपा से भंडार पूर्ण हो जायगा।"

ऐसा कहकर आप शीघ्रता से भण्डार में आये और एक

वस्त्र लड्डू-पूड़ियों पर डाल दिया तथा मंत्रों-द्वारा इष्टाराधन करके कहा—"वस्त्र मत हटाना। बस, परोसते जाओ।"

भंडार के संतों ने परोसना प्रारम्भ किया। बड़े आनन्द और उत्साह से सभी संतों को खूब छका-छका कर प्रसाद पवाया गया। २० मूर्त्तियों की सामग्री में ७० मूर्त्तियों ने तृप्त होकर प्रसाद पाया। अन्त में जब पंगत उठ गई, तब वैश्य भक्त ने वस्त्र हटाया तो सब सामग्री ज्यों-की-त्यों भरी थी। यह देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। महाराजजी के चरणों में पड़कर बड़ी देर तक वैश्य भक्त रोता रहा और शरणागत होकर अपने जीवन को सफल बना लिया।

—:०:—

शंकर-कृपा

रामनामायनं देवं रामभक्ताग्रजेश्वरम् ।
शंकरं सर्वदा वंदे रामभक्तिप्रदायकम् ॥

श्री शंकरजी को राम नाम बड़ा प्रिय है। जो राम नाम के धाम हैं तथा श्रीराम-भक्तों में सबसे बड़े कहे जाते हैं, ऐसे श्री राम-भक्ति का दान करने वाले देव-देव शंकरजी को मेरा प्रणाम है।

—:o:—

हमारे चरित्रनायक उस वैश्य-भक्त के यहाँ आनन्दपूर्वक रहते हुए भक्ति का प्रचार करने लगे। उन्हीं दिनों अयोध्या के महात्मा श्री हरिहरदासजी आ गये। यह बड़ सत्सङ्गी और परोपकारी महात्मा थे। श्रीहरिहरदासजी के साथ हमारे चरित्रनायक काशी आये। काशी में आपका मन खूब लगा—कहीं कथा श्रवण करते, कहीं दर्शन करते, कहीं नौका-बिहार करते, कहीं बैठ कर श्री रामलीलाओं का अनुसन्धान करते।

श्री नरहरिदासजी एक दिन सन्ध्या समय शिव-शतनाम स्तोत्र का पाठ कर रहे थे। इनका नियम था, नित्य तीन बार पाठ करने का।

उस दिन ज्योंही पुस्तक उठाई कि पाठ करना तो दूर रहा, एक अक्षर भी नहीं चला। कारण कि उस दिन आप प्रेम में विभोर थे। सामने गंगाजी की प्रबल धारा वह रही थी, उस धारा में उनको दिव्य-दर्शन हो रहे थे। अपने हृदय को न संभाल सकने के कारण आपने हमारे चरित्रनायक से कहा—"आज हमारे बदले में आप पाठ कर दें तो बड़ी कृपा होगी।"

श्री महाराज ने पाठ करना स्वीकार कर लिया। "शिव-शत-नाम" का पाठ पूरा करने के पश्चात् दोनों महात्मा अपने आसन पर आ गये। जब रात्रि में सोये तो श्री महाराजजो ने स्वप्न में देखा—"श्री शंकर भगवान् प्रकट हो गये हैं। उनके भाल पर चन्द्रमा चमक रहा है। श्री शंकरजी ने बार बार आशीर्वाद देते हुए आदेश दिया कि तुम अब अयोध्या जाओ, वहाँ पर प्राणियों के कल्याणार्थ कथा बाँचना तथा श्री रामनाम सुनाकर सबको भवसिन्धु से पार उतारना। वहाँ पर तुम्हारा बड़ा सम्मान होगा। भक्ति प्रचार करने का तुम्हारा मनोरथ वहीं पूर्ण होगा, शीघ्र जाओ।"

प्रातःकाल श्री हरिहरदासजी के साथ आप अयोध्या चल दिये। मार्ग में शंकरजी की कृपा का स्मरण करके बार बार

पुलकित हो उठते थे। श्री राम भक्तों पर बिना कारण ही शंकरजी कृपा करते रहते हैं। उनकी दयालुता की सीमा नहीं। संसार के सभी देवी-देवता स्वार्थपरायण हो सकते हैं, किन्तु श्री शंकरजी तो सर्बदा निःस्वार्थ होकर श्रीराम भक्तों की सहायता करते रहते हैं। उदाहरण के लिये गोस्वामी तुलसीदासजी का चरित्र देखिये तथा नरसी भक्त आदि के चरित्र देखिये। जब-जब संकट पड़ता है, तब-तब भक्तों की रक्षा बराबर आप करते ही रहते हैं।

—:०:—

अवध-प्रवेश

चित्रकूट सम शैल नहिं, अवध धाम सम धाम।
राम चरित सम चरित नहिं, राम नाम सम नाम॥

—श्री रामानन्दायन से

अयोध्या के समान संसार में कोई धाम नहीं। अयोध्या में आदि सृष्टि से मनु, मान्धता, दिलीप, भागीरथ, रघु, दशरथ आदि बड़े बड़े प्रतापी चक्रवर्ती नरेश होते आये हैं तथा भगवान श्री रामचन्द्र ने प्रकट होकर इसी भूमि पर राज्य किया था। अयोध्या की भूमि का कण-कण भगवान् की चरण-रज से अंकित है।

प्रतिवर्ष अयोध्या में जिस समय कार्तिक शुक्ल ९ आती है, (उसे अक्षय नवमी कहते हैं) उस दिन अयोध्या की १४ कोस की परिक्रमा होती है। दूर-दूर से लाखों भक्त आकर उस दिन परिक्रमा करते हुए भगवान् श्रीरामजी के नाम-यश का कीर्त्तन करते हैं।

दैवयोग से वि० सं० १९३८ में अक्षय नवमी के दिन प्रातः-काल ६ बजे हमारे चरित्रनायक ने श्री हरिहरदासजी के साथ अयोध्या में प्रवेश किया। उस दिन चारों ओर अयोध्या में बड़ी भीड़ देखकर महाराज ने पूछा—"आज यहाँ भीड़ क्यों है?" श्री हरिहरदासजी ने कहा—"अयोध्या में प्रतिवर्ष अक्षय नवमी को परिक्रमा होती है, आज परिक्रमा का बड़ा माहात्म्य है, एक-एक पग पर आज परिक्रमा में अश्वमेध यज्ञ का फल होता है। तथा—

यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च।
तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिण पदे-पदे॥

"जन्म-जन्मान्तरों में जो-जो पाप हुए हों, वे अयोध्या की परिक्रमा में पग-पग पर भस्म होते जाते हैं। इसलिये यदि आपकी इच्छा हो तो आज हम और आप भी शीघ्र ही चलकर परिक्रमा कर आयें।" महाराजजी ने कहा—"बड़े आनन्द की बात है। चलिये, हम भी उस लाभ को लूट लायें।"

प्रेम में मतवाले दोनों महापुरुष तत्काल ही परिक्रमा करने चल दिये। भरतकुण्ड आदि स्थलों के दर्शन करते हुए गुप्तार-घाट पर आये। वहाँ सरयूजी की प्रबल-धवल धारा को देखकर आपको बड़ा आनन्द अनुभव हुआ। वहाँ से आकर गोलाघाट पर विश्राम करके श्री जानकीघाट पर परिक्रमा समाप्त की।

अयोध्या में जानकीघाट पर एक मणिरामजी की छावनी नामक प्रसिद्ध स्थान है। इस स्थान पर संतों की खूब सेवा

होती है, आज भी इस स्थान पर संतों को रहने का स्थान तथा भोजन आदि सम्मानपूर्वक प्रदान किया जाता है। दूर-दूर देशों के संत आकर यहाँ भजन करने के लिये निवास करते हैं, किन्तु प्रत्येक साधु को यहाँ कुछ-न-कुछ भगवान् के मंदिर की सेवा भी करनी पड़ती है। किसी को फुलवारी से फूल लाने की सेवा, किसी को माला बनाने की सेवा, किसी को चन्दन घिसने की सेवा, किसी को पद गाने की सेवा, किसी को सरयू-जल लाने की सेवा—इस प्रकार संतों को प्रिय लगनेवाली भगवान की सेवा करनी पड़ती है।

इसी मणिरामजी की छावनी में आकर हमारे चरित्रनायक ने निवास किया। सब संतों ने आपका रूप और तेज तथा सुन्दर शील-स्वभाव आदि विलक्षण गुण देखकर खूब सम्मान किया। नित्य-प्रति संतों के सत्सङ्ग में आपको बड़ा हर्ष होता था। इसी स्थान में दो महात्मा इनके पड़ोस में और रहते थे, एक का नाम था श्री गणेशदास और दूसरे थे श्री ध्यानीजी, दोनों महात्मा बड़े अनुभवी थे। इनसे हमारे चरित्रनायक का बड़ा प्रेम हो गया।

ये दोनों महात्मा ५ बजे शाम को कहीं चले जाते थे और नित्य-प्रति सन्ध्या हो जाने पर आते थे। एक दिन हमारे महाराज ने पूछा—"आपलोग नित्य-प्रति कहाँ जाया करते हैं?" तब वे बोले—"हमलोग एक सिद्ध महात्मा के दर्शन करने जाते हैं।"

यह सुनकर उत्कण्ठित हो हमारे श्रीमहाराजजी भी उन दोनों महात्माओं के साथ चल दिये। सरयू-तट पर एकान्त कुटीर में महात्मा विद्यादासजी महाराज उस समय विराजमान थे। यह महात्मा बड़े योगी और सर्वज्ञ थे, योगबल से आप कहीं से-कहीं पहुँच जाते थे तथा अलौकिक विभूतियों से विभूषित थे। इन्हीं महात्माजी के पास वे दोनों संत सत्सङ्ग के लिये नित्य आते थे। हमारे चरित्रनायक ने दोनों संतों के साथ पहुँचकर दण्डवत् की। सत्सङ्ग होने लगा। महात्मा विद्यादासजी महाराज सदैव आँखें अधखुली रखते, वे किसी की ओर देखते ही नहीं, सदा ध्यान में लीन रहते। प्रश्न का उत्तर भी एक-दो शब्दों में ही दे देते थे।

महात्मा विद्यादासजी को देखकर हमारे चरित्रनायक को बड़ा कुतूहल हुआ, क्योंकि बालपन में जिन महात्मा ने दर्शन देकर मार्ग में कृतार्थ किया था, बिलकुल वही स्वरूप था। यह विचारने लगे कि यदि ये वही महात्मा होंगे तो कल मैं इनके पास एकान्त में आऊँगा, तो अवश्य ही पहले की बात बतायेंगे। ऐसा विचारकर लौट आये।

दूसरे दिन हमारे चरित्रनायक उन दोनों संतों से पहले ही महात्मा विद्यादासजी के पास चल दिये। आकर दण्डवत् की और अत्यन्त नम्र होकर कहने लगे—"दयामय! क्या मुझ दीन-दुखी पर भी आप कुछ कृपा कर सकते हैं!" महात्माजी

ने कहा—"जब तुम बालक थे, उस समय दो बार दर्शन देकर मैंने तुम्हें जो कुछ बतलाया था, क्या वह भूल गये ?"

यह सुनते ही हमारे चरित्रनायक गद्‌गद होकर उनके चरणों में लिपट गये। मानो चातक को स्वाति बिन्दु मिल गया हो अथवा अन्धे को आँखें मिल गई हों ऐसा अपार आनन्द उमड़ चला। उसके बाद बड़ी देर तक गुप्त रहस्यमयी बातें होती रहीं। भगवान् के स्वरूप दिव्य आचार्यों की अद्‌भुत चरितावाली कौन लिख सकता है और कौन समझ सकता है !

—:०:—

कूप-पतन

जनम-जनम जग कूप में, गिरयो मरयो बहुबार।
करि करुणा करुणाअयन, अबके लेहु उबार॥

महात्मा विद्यादासजी महाराज ने अपने अन्तरङ्ग शिष्य को दिव्य-ज्ञान-दृष्टि का साधन वतलाकर भगवान् श्रीरामजी की ललित लीलाओं में रसमय प्रेम उत्पन्न कर दिया। उस माधुर्य का आस्वादन कर हमारे चरित्रनायक का हृदय-रूपी हंस तुलसी-कृत मानस सरोवर में क्रीड़ा करने लगा।

उस समय महाराज की दिनचर्या बड़ी सुन्दर थी। रात्रि में दो बजे ही निद्रा-त्याग कर उठ बैठते तथा कुएँ पर जाकर नित्य-कृत्य (स्नानादि) करके, शुद्ध एकान्त स्थल पर आसन पर सिद्धासन लगा कर बैठ जाते, (मानसी सेवा की भावना का) सूर्योदय तक ध्यान करते। प्रातःकाल सरयू-तट आकर पुनः स्नान करते तथा श्री मंत्रराज का जप छः घंटे (मध्याह्न तक) करते रहते। मध्याह्न में प्रसाद पाकर फिर जप करने

बैठ जाते और ३ बजे तक जप करके पुनः स्नान करते तथा स्नान के बाद १ घंटा ग्रन्थों का पाठ करते ।

तदनन्तर श्री हनुमानगढ़ी में श्री हनुमानजी के दर्शन करके कनकभवन में जाते । वहाँ से लौटकर अपने सिद्ध गुरु श्री विद्यादासजी महाराज के पास आकर नित्य एक घंटा सत्सङ्ग करते । सायंकाल ६ बजे सब कार्यों से निवृत होकर भगवद्ध्यान करते हुए सो जाते । पुनः रात्रि में दो बजे उठ पड़ते । इस प्रकार हमारे चरित्रनायक का दिव्य साधनामय जीवन बन गया ।

इस साधना से कुछ ही दिनों में आपकी विलक्षण दशा हो गई । निर्मल हृदय-रूपी वसन अनुराग-रूपी रंग से रंग गया । प्रेम-रूपी चन्द्रमा की कलाएँ प्रतिदिन बढ़ने गीं । श्री तुलसी दासजी की रची हुई गीतावली के प्रेम-भरे पदों को आप गुन-गुनाते रहते थे । कभी-कभी पुष्पवाटिका में भगवान की सेवा के लिये तुलसी फूल लेने आप जाते तो पुष्पवाटिका की लीला का स्मरण कर आँखों से अश्रु बहाते हुए घंटों जड़वत् खड़-खड़े गीतावली के पद गाया करते थे ।

एक दिन आप प्रातःकाल सरयू-तट पर स्नान करने गये । उस समय गीतावली का यह पद स्मरण हो आया—

"लेहु री लोचनन को लाहु ।
कुँवर सुन्दर साँवरो सखि ! सुमुखि सादर चाहु ॥
खंडि हर कोदण्ड ठाढ़े, जानु लम्बित बाहु ।
रुचिर उर वनमाल राजति देति सुख सब काहु ॥

चितै चित हित सहित नख-सिख अंग-अंग निबाहु।
सुकृत निज सियराम रूप बिरंचि मतिहि सराहु॥
मुदित मन पर वदन शोभा उदित अधिक उछाहु।
मनहुँ दूरि कलंक करि शशि समर मार्‌यो राहु॥
नयन सुषमा अयत हरत सरोज सुन्दर ताहु।
बसत तुलसीदास उर पुर जानकी को नाहु॥"

इस पद को गाते हुए आप घंटों तट पर खड़े-खड़े जलधारा पर भगवान की झाँकी देखते रहे। आपकी सुधि-बुधि खो गई थी, इतने में एक संत ने आकर आपको चेत कराया, तब आपने स्नान किया।

इस प्रकार आपकी दशा बदलती ही गई। एक दिन रात्रि में दो बजे उठकर जब कुएँ पर स्नान करने गये तो आपको विरह उदय हो गया। आँखों से अश्रुधारा बह चली। विह्वल होकर "गीतावली" का (कौशिल्या माता के विरहवाला पत्थर-हृदय को भी रुला देनेवाला) यह पद गाने लगे—

"जब-जब भवन विलोकति सूनो।
तब-तब विकल होति कौशिल्या, दिन-दिन अति दुख दूनो॥
सुमिरत बाल विनोद राम के, सुन्दर मुनि मन हारी।
होत हृदय अति शूल समुझि पद पंकज अजिर-विहारी॥
को अब प्रातः कलेऊ मागत रूठि चलैगो माई।
श्याम तामरस नैन श्रवत जल काहि लेहुँ उर लाई॥
जिवौं तो विपति सहों निशि-वासर मरौं तो मन पछितायो।

चलत विपिन भरि नयन राम को वदन न देखन पायो ॥
"तुलसीदास" यह दुसह दशा अति, दारुण बिरह घनेरो।
दूरि करै को भूरि कृपा बिन शोक जनित रुज मेरो ॥"

चारों ओर अन्धकार था। कुएँ पर जल भरते हुए, विरह से आकुल हो उठे। सहसा किसी ने पुकार कर कहा—"साव-धान रहो।" यह सुनते ही आप चकित होकर चारों ओर देखने लगे किन्तु कोई देख न पड़ा।

एक बार आप दोपहर में कुएँ पर जल लेने गये। उस समय आपको श्री किशोरीजो का विरह स्फुरित हो आया—

"कह कपि कब रघुनाथ कृपा करि हरिहैं निज वियोग संभव दुख।"

इस पद को गुनगुनाते हुए आप ऐसे तन्मय हुए कि शरीर की सुधि-बुधि भूल कर विरहाम्बुधि में निमग्न हो गये। उसी समय कुछ चेतना आई कि जल भरना है, ज्यों ही जल भरने लगे कि सहसा चरण फिसल गया और आप उस गहरे कूप के अगाध जल में जा गिरे। आप को कुएँ में गिरते देखकर दूर बैठे हुए कुछ साधु हाहाकार करते हुए दौड़ पड़े।

उन लोगों ने कुएँ में जब देखा, तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। कुएँ के अगाध जल के ऊपर बीचो-बीच अधर में ही हमारे चरित्रनायक खड़े थे। बिना सहारे के अधर में खड़े देखकर सब लोगों को आनन्द हुआ, तमाशा देखने के लिये

चारों ओर से दौड़-दौड़ कर लोग आने लगे और एक-दूसरे से कहते हुए सब हल्ला मचाने लगे।

तदनन्तर सब ने मिलकर महाराज को कुएँ से बाहर निकाला। सबों ने देखा कि एक बूँद भी जल आपके अङ्गों में नहीं लगा था। सब संतों को इस घटना से बड़ा विस्मय हुआ। अयोध्यापुरी में सर्वत्र इस घटना की चर्चा फैल गई। छावनी के महन्तजी ने आकर महाराज से विनय की—"अब आप कोई कार्य न किया करें, आपकी सेवा के लिये हम सेवकों को नियुक्त करेंगे। आपको प्रेम की दिव्य दशा प्राप्त हुई है, आपकी ऐसी महिमा हमलोग नहीं जानते थे।"

—:*:—

लीला स्वरूपों का प्रभाव

अयोध्या में श्री रामलीला निरन्तर होती रहती है। भक्तों को भगवान् की लीलाओं द्वारा साक्षात्कार के सदृश दिव्य आनन्द का अनुभव होता है। लीलाएँ उनका स्मरण दिलाकर हृदय में रसों का उद्रेक कर देती हैं। देखा जाता है—वीर-रस की लीलाएँ वीरता का संचार कर देती हैं तथा करुणा-रस की लीलाएँ बरबस रुला देती हैं।

अयोध्या में एक श्री रामलीला मण्डली आई। उसमें श्री सीतारामजी की जोड़ी बड़ी मनोहर थी। जहाँ लीला होती, वहीं संतों को अपार आनन्द मिलता। एक श्री गोविन्दाश्रम नाम के बड़े प्रसिद्ध महात्मा उन दिनों अयोध्या में रहते थे। ये बड़े विद्वान् थे तथा बड़े कर्मकाण्डी संत थे। उनका मन उन लीलाओं में ऐसा आसक्त हुआ कि वे स्वरूपों को प्रत्यक्ष भगवान् की तरह मानने लगे, और स्वरूपों की जूठन प्रसादी लेकर पाने लगे।

एक दिन हमारे चरित्रनायक ने श्री गोविन्दाश्रमजी को लीलास्वरूपों की उच्छिष्ट प्रसादी पाते देखा। यह देखकर आप विचार करने लगे—"देखो ! यह कितने बड़े विद्वान् हैं, किन्तु इन बालकों का जूठा खा लेते हैं। मुझे यह बात अच्छी नहीं लगती। क्या हुआ जो सीतारामजी का-सा रूप बना लिया है—आखिर हैं तो यह गृहस्थों के ही लड़के। इनका जूठा खाना ठीक नहीं।"

इस प्रकार मन में ग्लानि करके आप अपने आसन पर चले आये। नित्य नियम के अनुसार सिद्धासन से बैठकर ध्यान करने लगे, किन्तु उस दिन ध्यान में इनको जरा भी एकाग्रता नहीं हुई। जब ध्यान में नित्य की भाँति भगवान के दर्शन नहीं हुए, तब आप अनेक प्रकार के प्रयत्न करने लगे। किन्तु किसी साधन से भी हृदय में भगवान् का स्वरूप नहीं आया। सारी रात व्यतीत हो गई। प्रातःकाल होने पर आपको बड़ा क्लेश हुआ। इतना महान् क्लेश हुआ कि अपने प्राणों को त्यागने का निश्चय कर लिया। सोचने लगे—जब हमारे प्राणाधार (दिव्य-दम्पति) ही रूठ गये हैं, तो इन प्राणों को रखकर क्या होगा ?

प्रातःकाल अत्यंत उदास मन से श्री सरयूजी में स्नान करने चले। किन्तु आज आपने सरयूजी में डूबने का निश्चय कर लिया था, इसलिये एकान्त—निर्जन घाट पर पधारे। तट पर खड़े होकर सरयूजी में प्रवेश करने को तैयार हो रहे थे कि

उसी समय वही लीला मण्डली के स्वरूप सीतारामजी आ गये। उनको देखते ही आप सोचने लगे—देखो ! मैं इस निर्जन औघट घाट पर आया था, किन्तु यहाँ भी ये लोग स्नान करने आ गये।

उधर वह स्वरूप श्री सीतारामजी सरयू में स्नान करने लगे। उनके साथ एक सेवक भी था—स्नान करके वस्त्राभूषण पहनकर श्री सीतारामजी तिलक लगाने लगे।

हमारे चरित्रनायक दूर खड़े-खड़े सोच रहे थे कि ये लोग स्नान करके चले जायँ, तब सरयू में प्रवेश करूँ। उधर श्री सीतारामजी के स्वरूप ने हमारे चरित्रनायक को अपने पास बुलाया और कहा—"महात्माजी ! तिलक लगवा लीजिये। आइये, मैं अपने हाथ से तिलक लगा दूँ।"

महाराज—"अभी मैंने स्नान नहीं लिया है। स्नान करके निज स्थान पर जाकर तिलक लगा लूँगा।"

किशोरीजी—"आप स्नान करके निज स्थान पर जाने के लिये तैयार हैं या सरयू में डूबने का विचार कर रहे हैं, सच-सच बतलाइये।"

यह सुनकर महाराज लज्जित हो गये। अपना संकोच मिटाने के लिये शीघ्रता से स्नान करके निकल आये और बोले—"लीजिये, अब तो आपको कोई शंका नहीं है।"

किशोरीजी—"तो आप स्नान करके योंही मत जाइये, आज हम अपने हाथ से आपके तिलक लगायेंगे।"

उस वाणी में विचित्र आकर्षण था। श्रीमहाराज खिचे हुए चले गये। किशोरीजी ने अपने कर-कमलों से आपके मस्तक पर तिलक लगा दिया। उस कर का स्पर्श होते ही आपके हृदय में बिजली के समान प्रकाश छा गया। दिव्य-दृष्टि खुल गई। जान गये कि यह साक्षात् हमारे इष्ट-देव ही प्रकट होकर हमें दर्शन देने आये हैं। पहचानते ही चरणों में गिरकर गद्‌गद होकर नेत्रों से अश्रुधारा बहाने लगे, शरीर की सुधि भूल गये।

श्री सीतारामजी ने अपने कर-कमलों से उठाकर बैठाया और प्रेमपूर्वक कहने लगे—"जब शृंगार हुआ हो, उस समय हमारे लीला स्वरूपों में और मंदिरों की मूर्त्तियों में तथा हममें कोई भेद नहीं समझना चाहिये। यदि कोई अभाव लाकर ग्लानि करता है, तो अपराध लगता है। अब ऐसा न करना। बस आज से अब तुम्हारी भक्तिभावना विश्व में विख्यात होगी। हम तुम पर बहुत प्रसन्न हैं, संसार को कथामृत पिलाकर तृप्त करो।"

इतना कहकर उसी समय वे स्वरूप अन्तर्द्धान हो गये। उनके साथ का सेवक भी अदृश्य हो गया—वे श्री हनुमानजी थे।

हमारे चरित्रनायक विह्वल दशा से अपने आसन पर आये। आज आपके मुख-मण्डल पर अपूर्व तेज जगमगा रहा था। सब संत देख-देख कर चकित हो रहे थे। उस

दिन से आपको ध्यान में नित्य साकेत-बिहारी के दिव्य-दर्शन होने लगे।

नित्य-प्रति आप उस लीला-मण्डली की झाँकी के दर्शन करने जाने लगे। अपने पूर्वकृत अपराध के लिये पश्चात्ताप भी करते थे। शृंगार के समय स्वरूपों को साक्षात् पूर्ण ब्रह्म साकेताधिपति ही मानने लगे।

एक दिन आपको लीला देखने जाने के लिये देर हो गई। उस समय आप पहुँचे जब कि स्वरूपों का शृंगार उतारा जा रहा था। उस दिन जिसने शृंगार किया था, उसने गलती से श्री रामजी की भुजा में अंगद अधिक कस के बाँध दिया था। उस अंगद (बाजूबंद) को जब खोला गया तो श्री रामजी की भुजा में गड़ने का चिह्न स्पष्ट दिखाई दिया। उसको देखते ही आपको महान् कष्ट का अनुभव हुआ। अपने प्राणाधार को आज बड़ा कष्ट हुआ होगा। यह विचार कर आपको इतना दुःख हुआ कि आपके नेत्रों से अश्रुधारा वह चली, व्याकुल होकर अपने स्थान पर आये, भोजन करना तो दूर रहा, जल तक नहीं पिया। धन्य है प्रेम की प्रबलता !

प्रेम की बात प्रेमी ही जान सकते हैं। जिसके हृदय में प्रेम की चोट लगी है, वही समझ सकता है।

प्रेम की बातैं अतिहि अटपटी।
सो जानै जेहि लगै चटपटी॥

प्रेम बात सुनि बौरा होई।
तहां सयान रहै नहि कोई॥

खान-पान सुख चाहत अपने।
तिनहि प्रेम परसत नहि सपने॥

प्रेमी आनन्द में हँसता है, विरह में व्याकुल हो जाता है। उस प्रेमी-पागल की बात कौन समझे ! किन्तु यह प्रेम सबको मिलता नहीं। जो अपने खान-पान आदि सुखों में मग्न हैं, उनके पास तो प्रेम की हवा भी नहीं जाती। प्रेम तो दुनिया से निराली चीज है।

हमारे चरित्रनायक को इतनी वेदना बढ़ी कि रात में निद्रा भी नहीं आई। धीरे-धीरे अर्द्ध रात्रि व्यतीत हो गई। बार-बार उसी भुजा का ध्यान करके विकल हो जाते। धीरे-धीरे जब व्याकुलता इतनी बढ़ गई कि प्राणान्त कष्ट होने लगा तो दया के निधान करुणा-वरुणालय श्री दशरथराजकिशोर प्रकट हो गये। नील मणिमय प्रकाश कुटी में छा गया। भगवान ने अपने कर-कमलों से उठाकर सचेत किया—देखा कि अंग काँप रहे थे, अश्रुधारा से वस्त्र गीले हो रहे थे मुख से बोल नहीं निकलता था। यह दशा देखकर कौशिल्यानदन ने अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टि से सब व्यथा हर ली। सावधान होकर उठ बैठे। अपने सन्मुख अपने प्राणनाथ को देखकर चरणों में गिर पड़े। श्री रामजी ने कहा—"आप क्यों इतने अधीर हो रहे हैं ? देखो, मेरी भुजा में कहीं भी चिह्न नहीं है। अब बिलकुल ठीक हो गया है। ऐसे कहकर अपने मुख-चन्द्र के प्रकाश में अपनी भुजा दिखला दी।

हमारे चरित्रनायक अपने प्राणप्रिय श्री दशरथकुमार की रूप-छटा अवलोकन करने लगे। सारी व्यथा भूल गई। आनन्दित होकर मुकुट के मणियों की झलक और अलकों की लहरन तथा कुण्डलों की कान्ति से चमकते हुए कपोलों की छटा और अधरों पर मधुर मुसकान और बड़े-बड़े नेत्र-कमलों को कटीली चितवन निहारने गये। हृदय पर बनमाला शोभित थी, अंगों से लुनाई की लहरें और सुगंधि की तरंगे उठ रही थी। पीताम्बर में लाल और हरी किनारी तथा चरणों में श्यामलता मिश्रित अरुणता युक्त नख-चन्द्र चमक रहे थे।

उस सौन्दर्य-माधुर्य के उद्गम स्थान श्री अंग की मनोहरता देख-देख कर आपको तृप्ति नहीं होती थी। सोचने लगे—यह स्वप्न है या मैं जग रहा हूँ? इधर जब भगवान् ने देखा—यह कुछ बोलते ही नहीं, तो आप सहसा अन्तर्द्धान हो गये।

भगवान् के अन्तर्द्धान होने पर आप के हृदय की क्या दशा थी? पहले तो परम क्लेश से व्याकुल थे, अब आनन्द का समुद्र उमड़ चला था, किन्तु जैसे मिले हुए खजाने के खो जाने से विकलता होती है, ठीक वैसो विकलता फिर आ पहुँची। इस प्रेम की बड़ी विचित्र लीला है, किसी तरह चैन नहीं। इसीलिये तो प्रेमीजन कहते हैं—

"इन अखियाँ दुखियान को, सुख सिरज्यो विधि नाहिं।
देखे बनै न देखते, बिन देखे अकुलाहिं॥"

—:०:—

अलौकिक दृश्य

रामरूप रस माधुरी, लीला ललित विलास।
ज्यों-ज्यों पीवत को मिलै, त्यों-त्यों बाढ़ै प्यास।

जिस दिन से राजिवलोचन ने अपने परात्पर स्वरूप के दर्शन देकर कृतार्थ किया, उसी दिन से दर्शनों के लिये अत्यन्त उत्कण्ठा उदय हो गई। चाहिये तो यह था कि अब दर्शन हो चुके थे, विरह शान्त होकर मन में आनन्द भर जाता, किन्तु बात बिलकुल उल्टी हुई। विरह-व्यथा चौगुनी बढ़ गई। यद्यपि आप बहुत चेष्टा करते थे कि अपने मनोभावों को किसी पर प्रकट न होने दें, परन्तु छिपाने पर भी आपकी विरह-दशा प्रकट हो जाती थी।

एक दिन आप विरहाकुल हो नेत्रों से अश्रु बहाते हुए बैठे थे। आपकी दशा देखकर एक संत से न रहा गया। वह प्रेमी संत आपका दुःख दूर करने के लिये जयपुर से आया हुआ—श्री रामजी का परम मनोहर नवीन चित्र ले आये और उस चित्र को बड़े प्रेम से दिखलाने लगे। हमारे चरित्रनायक ने उस चित्र को देखते ही छाती से लगा लिया और बार-बार

माधुरी निहार कर जोर-जोर से रोने लगे। वह संत कहने लगे—"आप व्याकुल क्यों होते हैं ? सरकार के दर्शन करो, देखो ! कितना मनोहर चित्र है।" यह सुनकर आप विह्वल होकर बोले—

"बार-बार काहे को दिखावत हौ चित्र, हाय !
चित्रके बिलोके चित्त चौगुनो जरत है ॥"

वह प्रेमी संत बड़े चक्कर में पड़ गये। सोचने लगे—"यह विरह-रोग भी अजीब होता है, जितनी दवा करो, उतना ही यह बढ़ता जाता है।"

तदनन्तर रात्रि में जब आप प्रेम-विह्वल होकर ध्यान करने बैठे, तो श्री हनुमानजी ने ध्यान में दर्शन देकर कहा—"आज सायंकाल कनक-भवन में आइयेगा।"

यह विमल-बाणी ध्यान में सुनकर आपको बड़ा आनन्द हुआ। दूसरे दिन प्रातःकाल से ही उत्कंठा बढ़ने लगी—"कब सन्ध्या हो और कब कनक-भवन में जाऊँ ? पता नहीं, क्यों आज्ञा मिली है, क्या आज कोई विशेष कृपा होगी ?" इस प्रकार आतुरतापूर्वक सन्ध्या समय श्री कनक-भवन में आये। ज्योंही मंदिर में चरण रक्खा कि सारा मन्दिर प्रकाशित हो उठा। पृथ्वी, दीवालें, दरवाजे, झरोखे आदि सब मणिमय दर्शित होने लगे। अन्दर मन्दिर में दृष्टि डाली तो रत्नसिंहासन के स्थान पर रत्न-जटित दिव्य शय्या दिखलाई दी। उस सेज पर प्रिया-प्रियतम गलबाहीं दिये हुए बातें कर रहे थे। उनकी

बोलन, चितवन, मुसकान तथा खेलन बड़ी मनोहर थी। अंग-अंग में अपार रूप-माधुरी अवलोकन कर आनन्द-सिन्धु में निमग्न हो गये।

प्रिया प्रियतम की सेवा में सखियां लगी हुई थीं। कोई चँवर कर रही थी, कोई इतर लगा रही थी, कोई माला पहना रही थी, कोई पान खिला रही थी। यह सब दृश्य आप आँखें खोले हुए देख रहे थे। जब आनन्दोद्रेक से आँखे आप ही बंद हो गईं तो आपने ध्यान में भी वही सब दृश्य देखा—वहाँ श्री हनुमानजी को भी देखा। हनुमानजी ने कहा—आज आपने प्रणाम भी नहीं किया, सावधान होकर सरकार को प्रणाम करो।

श्री हनुमानजी के संकेत से आपने प्रणाम किया तथा आँखें खोल दीं। आँखें खोलने पर भी वही झाँकी थी। कुछ सावधान होने पर आप उठ कर अपने स्थान की ओर चले, किन्तु वह झाँकी ज्यों-की-त्यों दिखाई देती थी, कनक भवन से मत्त गजेंद्र के मन्दिर तक वह दृश्य दिखाई दिया—बाद में सब लीला विलीन हो गयी।

तदनन्तर अपने स्थान पर आकर भगवत्सेवादि कार्यों में लग गये। नित्य नियमानुसार जप-पूजन आदि करके १० बजे शयन आरती के समय छावनी-मंदिर में गये। वहाँ फिर वही कनक-भवन वाला दृश्य प्रकट हो गया। रात्रि भर वह दिव्य झाँकी होती रही।

प्रातःकाल सावधान होने पर नित्य-कृत्यों में लग गये। संध्या से पहले ही गुरुदेव के निकट गये और सत्संग-सेवा आदि के पश्चात् गोलाघाट पर विचरने चले गये। वहाँ से लक्ष्मण किला तथा स्वर्गद्वारघाट, रामघाट, नयाघाट आदि स्थलों पर श्री सरयू के किनारे-किनारे आनन्द लेते हुए श्री जानकीघाट पर आये। यहाँ स्नानादि करके पुलिन पर बैठ तरङ्गों की शोभा देखते हुए मंत्रराज का जप करने लगे। थोड़ी देर जप करके फिर तट पर इधर-उधर बिचरते हुए आकाश-मण्डल की ओर दृष्टि उठा कर तारागणों का निरीक्षण करने लगे। सन्ध्या हुए अभी १ ही घंटा व्यतीत हुआ था। चन्द्रदेव अभी उदय नहीं हुए थे, किन्तु प्राची दिशा-रूपी रमणी का मुख-मण्डल गुलाल से लाल करना प्रारम्भ कर दिया था। तारागण मोती की लड़ी से बिखरे हुए प्रतीत होते थे। आप बड़ी तन्मयता से आकाश की अनुपम अलंकार-छटा देख रहे थे कि सहसा सरयू-जल में से एक विचित्र प्रकाश निकल कर इनके पास आ गया। बह प्रकाश नहीं मानो साक्षात् सूर्य सम्मुख आ गये हों, ऐसा तेज देखकर सहन न होने से घबरा कर आँखें आप ही बन्द हो गईं।

जब कुछ समय पश्चात् आपने आँखें खोली तो अपने को एक पुष्पबाटिका में पाया। वहाँ की भूमि मणिमय थी, विचित्र वृक्षों और लताओं में फूल खिले हुए थे, झुंड-के-झुंड भ्रमर गुंजार कर रहे थे, शुकादि पक्षी चहचहा रहे थे, कोकिल

कलित-कण्ठ से सुरीली तान छेड़ रही थी। बीच-बीच में विमल सरोवर थे, रंग-रंग के कमल प्रफुल्लित थे, कुंज-निकुंजों के मध्य वीथियों में रंगीन फुहारे चल रहे थे। उस उद्यान के मध्य में विशाल क्रीड़ा-भवन था, जिसकी शोभा इन्द्र-मन्दिर से कोटिगुणी लगती थी। उस रत्नमय क्रीड़ा-भवन में कल्प-वृक्ष के नीचे, कमलाकार सिंहासन पर श्री सीतारामजी विराजमान थे, सखियाँ चँवर-छत्र लिये सेवा में तत्पर थी। उस महल में डरते-डरते आपने पदार्पण किया, श्री चन्द्रकलासखीजी ने प्रेमपूर्वक आपको बुला लिया। निकट आकर दिव्य दम्पति को प्रेम से दण्डवत् की। पश्चात छवि निहारते हुए बिचारने लगे कि यदि इस समय मेरे पास कुछ होता तो सरकार की सेवा में अर्पण करता, अब क्या करूँ ? इनके मन की जानकर तत्काल श्री चन्द्रकलाजी ने आपको पानदान दे दिया। तब, हर्षित होकर आपने प्रिया-प्रियतम को पान खिलाये। प्रसन्न होकर प्रिया-प्रियतम ने आपको प्रसादी-पान प्रदान किया।

पश्चात् लालसा जाग्रत हुई कि दम्पति के चरणों की सेवा करें, किन्तु संकोचवश नीची दृष्टि करके खड़े हो रहे। पुनः चन्द्रकलाजी ने मनोभाव जानकर कहा—सरकार की चरण-सेवा कीजिये। हमलोग तो रोज ही सेवा करती हैं, आज आप प्रेम से सेवा करिये।"

यह सुनते ही संकोच त्याग कर प्रिया-प्रियतम के चरणों को दबाने लगे। उन कमल-दल-मृदुल, माखन-सदृश चिकने

और अनेकों दिव्य रेखाओं से रंजित चरणारविन्दों की सेवा करने लगे। श्री महाराज चरण-सेवा करते हुए विचार करने लगे कि अहो! यह समय कितना सुन्दर है। यह छविमय दर्शन और यह दिव्य-सेवा मुझे प्राप्त हुई है, यही मेरा मनोरथ था, अब पूर्ण हो गया, किन्तु कहीं इनसे फिर बियोग न हो जाय। सहसा, आप व्याकुल हो गये। विरह की अद्भुत दशा उदय हो गई और नेत्रों से अश्रु बहाने लगे।

दिव्य दम्पति और श्री चन्द्रकलाजी आपकी विकलता देखकर चकित हो गये। चन्द्रकलाजी ने पूछा—"आप के सम्मुख साक्षात अनन्त कोटि ब्रह्माण्डाधिपति भगवान् विराज-मान हैं, इनको पाकर भी आप व्याकुल हो रहे हैं, यह क्या बात है?" श्री महाराज ने कहा—"हाँ, मेरा अपराध है जो सरकार के सम्मुख रो रहा हूँ, क्योंकि प्रभु आनन्दमय हैं, आपको सदा प्रसन्न ही करना चाहिये। किन्तु मुझे भय है कि कहीं अब फिर इनसे बियोग न हो जाय। यही दुःख मुझे व्याकुल कर रहा है।"

यह सुनकर चन्द्रकलाजी चुप हो गईं और प्रिया-प्रियतम की ओर देखने लगीं। तब प्रिया-प्रियतम मुस्कराकर कहने लगे—"अब वियोग नहीं होगा। अब सर्वदा तुम्हारे हृदय में हम इसी रूप से विराजमान रहेंगे। एवमस्तु-एवमस्तु। तुम व्याकुलता त्याग दो।"

यह सुनते ही आपकी सारी विकलता दूर हो गई। आनन्द से गद्‌गद् हँसने लगे। प्रसन्नता के आवेग से

उछलकर आप सरकार के चरणों में पड़कर लोटने लगे। युगल सरकार ने मस्तक पर कर-कमल फेर दिया। तदनन्तर आप उठ बैठे और रूप-माधुरी अवलोकन करने लगे।

उसी क्षण सहसा इतना प्रकाश प्रकट हुआ कि आपकी आँखें मुँद गईं। थोड़ी देर में जब आपने आँखें पुनः खोलीं तो आपने अपने को श्री सरयू-तट पर बैठा पाया। वह सारा अलौकिक दृश्य अदृश्य के पेट में समा गया। आपने आकाश-मण्डल की ओर दृष्टि डाली तो उस समय नक्षत्रों के अनुसार पता लगा कि एक प्रहर रात्रि और शेष है अर्थात् तीन बजे थे, रात्रि का अवसान और नित्य-नियम का समय जानकर आपने श्री सरयू में स्नान किया और उसी अलौकिक छवि के हृदय में दर्शन करते हुए आसन पर आकर जप करने लगे। उस दिन से आपके हृदय में वह दिव्य झाँकी निरन्तर अविचल होकर बस गई।

—:०:—

कथा-प्रचार

आनन्द के सिन्धु का जब किसी संत के हृदय-सरोवर में आविर्भाव होता है तो मानस-सरोवर को परिप्लावित करके उमड़ चलता है और वह सारे संसार-रूप उपवन को यत्र-तत्र अपने प्रबल वेगवाली धाराओं से सींचने लगता है।

जब हमारे चरित्रनायक के हृदय में निरन्तर दिव्य-दर्शन होने लगे और आपकी ध्यानावस्था संतों ने देखी तो आपके तेज के प्रभाव से प्रभावित होकर सब सन्त आपमें अलौकिकता का अनुभव करने लगे। एक दिन आपके सिद्ध गुरुदेव श्री विद्यादासजी महाराज ने आपसे कहा—"वत्स! मुझे विनय-पत्रिका के पदों की व्याख्या करके सुनाया करो।"

श्री महाराज ने सरल-स्वभाव से आज्ञा स्वीकार कर गुरुदेव की कुटी में कथा प्रारम्भ की। कथा सुनने के लिये पास-पड़ोस के संत इकट्ठे हो आये। उस आन्तरिक अनुभव से परिपूर्ण कथा को सुनकर सब सन्त तन्मय हो गये। ऐसा आनन्द प्राप्त हुआ कि सब सन्त मुग्ध होकर प्रथम दिन ही अपार प्रशंसा करने लगे।

इस प्रकार नित्य-प्रति श्रोताओं की भीड़ बढ़ने लगी। क्रमशः गीतावली, दोहावली आदि गोस्वामी तुलसीदासजी के सब ग्रंथ सुनाये। जिस समय श्री रामचरितमानस की

कथा आप कहने लगे, उस समय तो आनन्द की नदी बह चली। सन्तजन दिव्य कथा सुनकर प्रशंसा करते हुए तथा जय-जयकार करते हुए कथा से लौटते थे। इस प्रकार जब आपकी कथा की चारों ओर महान् महिमा फैल गई तब एक दिन संतों ने आपसे कहा—"श्रीवाल्मीकीय रामायण की कथा श्रवण करने की हमलोगों को लालसा है, इसलिये कृपाकर सुनाइये।"

श्री महाराज ने कहा—"हमने संस्कृत का अध्ययन यथा-विधि नहीं किया है, इसलिये हम वाल्मीकीय रामायण कहने में असमर्थ हैं।"

यह सुनकर संतों को सन्तोष नहीं हुआ। तब श्री विद्या-दासजी महाराज ने कहा—"वत्स! तुमने प्रज्ञावर्द्धन स्तोत्र सिद्ध किया था। उसके प्रभाव से तथा साक्षात् भगवान् जो तुम्हारे हृदय में विराज रहे हैं, उनकी कृपा से तुम वेदव्यास के समान सर्वशास्त्रों के ज्ञाता हो जाओगे।"

श्री विद्यादासजी की आज्ञा से संस्कृत का बोध प्राप्त करके आपने शीघ्र ही वाल्मीकीय रामायण की कथा प्रारम्भ कर दी। वह कथा ऐसी विलक्षण हुई कि बड़े-बड़े विद्वान् आश्चर्य में पड़ गये। आपका कण्ठ बड़ा ही मधुर था। जो शब्द निकलते थे, वह मोती की लड़ी के समान बड़े ही मनोहर लगते थे।

देश-देश के विद्वान् आकर अयोध्या में आपकी कथा सुनकर प्रफुल्लित हो उठते थे। मानो साक्षात् शुकदेवजी ही अवतरित होकर कथा-प्रचार कर रहे हों। क्रमशः श्रीमद्भागवत, महाभारत, *भगवद्गीता और अठारह पुराण आपने ऐसी सुन्दर व्याख्या करके सुनाये कि संसार आश्चर्य

करने लगा। श्रोताओं की इतनी भीड़ होने लगी कि छावनी का कथा-मण्डप बहुत विशाल बनवाना पड़ा। उसमें भी जब श्रोतागण पूर्णरीति से न आ सके, तब सहस्त्रों कथाप्रेमी मण्डप के बाहर बैठकर श्रवण करने लगे। बड़े-बड़े विद्वान्, शास्त्री, आचार्य और महामहोपाध्याय भी आकर आप से गूढ़-से-गूढ़ वेदान्त-सिद्धान्तों के विषय में प्रश्न करते थे तथा अपने प्रश्न का विचित्र और समुचित विद्वतापूर्ण उत्तर पाकर प्रशंसा करते हुए अपने घर लौट जाते थे।

इस प्रकार आपकी प्रशंसा जब सारे भारतवर्ष में होने लगी तब आपके दीक्षा-गुरु श्री रामवचनदासजी महाराज को भी अपने प्रिय शिष्य की कथा सुनने की लालसा उत्पन्न हुई और शीघ्र ही अयोध्या आकर देखा कि प्रिय शिष्य उच्च सिंहासन पर विराजमान होकर श्री महाभारत की कथा श्रवण करा रहे हैं। सहस्रों संत मुग्ध हो श्रवण कर रहे हैं तथा उनके मस्तक पर तुलसी और पुष्प चढ़ा रहे हैं। बड़े-बड़े विद्वान् नतमस्तक होकर प्रणाम कर रहे हैं।

अपने शिष्य का महान् प्रभाव देख तथा प्रेमामृत से सनी अनुपम मधुर कथा श्रवण कर आनन्द से गद्गद् हो उठे। जब हमारे चरित्रनायक ने अपने श्री गुरुदेव को देखा, तो विह्वल होकर चरण-कमलों में लिपट गये। गुरुदेव ने उठाया और अनुराग देखकर कहने लगे—"मैं तुम्हारा प्रभाव देखकर तथा अमृतोपम कथा सुनकर कृतार्थ हो गया। अब मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया।"

तदनन्तर कुछ दिनों अयोध्या में सुखपूर्वक रहकर श्रीरामवचनदासजी महाराज अपने आश्रम पर जाने के लिये

उद्यत हुए। चलते समय परीक्षा के लिये कहने लगे—"मेरी इच्छा है कि तुम मेरे साथ चलो और पौंडी-ग्राम में मेरी सेवा करो तथा मुझे कथा सुनाओ।"

यह सुनते ही आप आनन्द से पुलकित हो उठे और बोले—"नाथ! मेरी भी बहुत दिनों से यही लालसा थी कि आपकी सेवा करूँ सो बड़ा उत्तम अवसर है, मैं साथ ही चलूँगा।" ऐसे कहकर आप आनन्द में मग्न हो गये और शीघ्र ही जाने के लिये तैयारी करने लगे।

यह सुनकर तथा अति उत्कट उत्साह देखकर गुरुदेव प्रफुल्लित हो उठे। कहने लगे—"वत्स! तुम्हारी यहाँ इतनी प्रतिष्ठा है कि ब्यासजी को भी शायद इतना सम्मान जीवित दशा में प्राप्त न हुआ हो, किन्तु तुमने इस प्रतिष्ठा को तृण की तरह त्यागकर, मेरी सेवा के लिये जाना आनन्दित होकर स्वीकार कर लिया। जरा भी उदासी हृदय में नहीं आई। इसलिये मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हुं, तुम यहीं रहो और संतों को भगवद्‌लीलाएँ सुनाकर अमृत वर्षा करो।

ऐसा कहकर भूरि-भूरि सराहना करते हुए आशिष देकर अपने आश्रम पर—पौंडी-ग्राम में चले गये। श्री महाराज अयोध्या में सर्वश्रेष्ठ गिने जाने लगे और आपका नाम 'श्री पंडितजी' विख्यात हुआ।

—:०:—

गुरु-वियोग

लौकिक-विज्ञान की चरमसीमा लोक में ही सीमित रह जाती है, किन्तु ज्ञानी भक्त मंत्र-बल से अलौकिक विज्ञान के वेत्ता बनकर सीमा को पार कर जाते हैं और अबिनाशी-लोक का मार्ग खोजकर अमृतत्व को प्राप्त करने के लिये ब्रह्माण्डाधीश्वर के चरणारविन्दों की सुर-मुनि दुर्लभ सेवा को याचना करते हैं। मंत्र में हो सर्व शक्तियाँ बिद्यमान हैं। मंत्र का जापक सिद्ध होने पर क्या नहीं कर सकता? मंत्र में दृढ़ विश्वास हो और गुरुदेव की कृपा हो तो इष्टदेव का साक्षात्कार करके चतुर्वर्ग ही नहीं, सृष्टि रचने की भी सामर्थ्य प्राप्त की जा सकती है।

एक दिन हमारे चरित्रनायक अपने सिद्ध गुरु श्री विद्यादास जी के निकट बैठे सेवा में संलग्न थे। उस समय अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रेम-प्रदर्शित करते हुए श्री विद्यादासजी ने कहा— "वत्स, तुमने मेरी अत्यन्त सेवा की है। तुमने कथामृत पिलाकर सब संतों को वश में कर लिया है। तुम्हारे लक्षण महर्षियों के समान हैं। अपने अलौकिक गुणों के द्वारा तुमने सबको आश्चर्य में डाल दिया है। मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ। अब तुम मेरी आज्ञा से संसार के तापों से संतप्त जीवों को भवसागर से पार करने के लिये श्री मंत्रराज की दीक्षा देना प्रारम्भ करो। तुम्हारे पास लोग दीक्षा लेने आते हैं तो तुम लौटा देते हो, यह ठीक नहीं। बिना राम-मंत्र के उनकी

माया-वासना नाश नहीं हो सकती। माया-मोह मिटाकर विरक्त बनानेवाला श्री राममंत्र ही है। इसलिये तुम उपदेश देना प्रारम्भ करो। बिना वैष्णव संस्कार हुए गृहजाल नहीं कटता। इसलिये जो विरक्त होना चाहें, उनको सच्चे विरक्त बनाओ। संसार में इस समय सच्चे संतों की बहुत कमी है।"

हमारे चरित्रनायक ने श्री गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य की और याचना करनेवाले भक्तों को दीक्षा देना प्रारम्भ कर दिया। सवत् १६५१ में आपने उपदेश देना प्रारम्भ किया। उसी संवत् में आपके सैकड़ों प्रसिद्ध-प्रसिद्ध व्यक्ति शिष्य हुए। आपका उपदेश प्राणियों के हृदय में बिजली के समान अति शीघ्र असर करता था।

श्री विद्यादासजी संवत् १६५१ कार्त्तिक शुक्ला २ को प्रातःकाल आसन पर विराजमान हुए और सिद्धासन से बैठकर सब प्रेमी संतों को बुला भेजा। सन्तों के आ जाने पर आपने कहा—"मैं अब दिव्य अयोध्या में जाना चाहता हूँ, तुमलोग मेरे परमप्रिय श्री रामबल्लाभाशरणजी से कथामृत का पान करते रहना तथा भक्ति-प्रचार में इनकी सहायता देते रहना।"

ऐसा कहकर आपने श्री मंत्रराज का जप करते हुए ध्यान में मन लीन किया। भगवद्ध्यान में निमग्न होकर ब्रह्माण्ड-भेदन द्वारा सबके देखते-देखते उदय होते हुए सूर्यमण्डल में प्रवेश कर साकेतधाम में चले गये।

सिद्ध गुरुदेव के वियोग से आपको बड़ा क्लेश हुआ, किन्तु सिद्ध-स्वरूप से उनके पुनः दर्शन पाने पर आपका सारा शोक दूर हो गया।

एक दिन हमारे चरित्रनायक आसन पर बैठे हुए ध्यान कर रहे थे। ध्यान में आपने पौंडी ग्राम देखा तथा गुरुदेव श्री रामवचनदासजी को विमान पर बैठकर आकाश में जाते हुए देखा। यह देखकर आप व्याकुल हो उठे और उसी समय जयगोपालदास नामक साधु को बुलाकर कहा—"तुम अभी पौंडी ग्राम में जाकर हमारे गुरुदेव का समाचार लाओ।" जयगोपालदासजी शीघ्र ही पौंडी ग्राम चले गये।

इधर महाराज ने सब संतों से उसी समय अपने ध्यान की बात सुनाई, किन्तु किसी को विश्वास नहीं हुआ। वह तिथि और समय लिख लिया गया। उधर जब जयगोपालदासजी पौंडी से लौटकर आये तो उन्होंने बतलाया कि गुरुदेव का साकेतवास हो गया। वही तिथि और वही समय ठीक निकला। यह देखकर सब संतों को उस दिन से श्रीमहाराजजी के वाक्य ध्रुव-सत्य प्रतीत होने लगे।

एक दिन एक संत ने आकर प्रश्न किया—"आजकल सब उपाय करने पर भी श्रीभगवद्दर्शन नहीं होते, क्या कारण है?"

श्री महाराज ने उत्तर दिया—"शुद्ध अन्नादि नहीं मिलते तथा आजकल परिश्रम भी कोई नहीं करता। यदि केवल मंत्रराज का ही निष्कामभाव से सवा करोड़ जप किया जाय तो भगवद्दर्शन हो सकते हैं, किन्तु अन्न निर्दोष होना चाहिये।"

—:०:—

आत्मिक-शक्ति

शरीर लौकिक दृष्टि से कार्य करते देखा जाता है, किन्तु वास्तव में शरीर कुछ नहीं करता। इसमें बैठा हुआ जीवात्मा ही अपने मन आदि अन्तःकरण चतुष्टय से शरीर का अनुभव किया करता है। जब जीव निकल जाता है तब शरीर मृतक हो जाता है, कोई कार्य नहीं कर सकता। इसलिये वास्तव में आत्मिक-शक्ति ही सत्य वस्तु है। किन्तु, जैसे शरीर खाने-पीने तथा व्यायाम आदि से बलवान और मोटा हो जाता है, वैसे ही आत्मिक-शक्ति भी मंत्र-जप, पाठ-पूजा आदि साधनों से बढ़ाई जा सकती है। जैसे—वस्त्र शरीर पर धारण करने से कुछ ही दिनों में मैला होकर धीरे-धीरे बिलकुल काला-सा हो जाता है और उसे धोने के लिये साबुन आदि लगाकर अति परिश्रम करके स्वच्छ करना पड़ता है, उसी प्रकार अन्तःकरण भी शरीर के खान-पान आदि विहारों में पड़कर नित्यप्रति मलीन होते जाते हैं और जीवात्मा की शक्तियाँ प्रतिदिन क्षीण होती जाती हैं। इसीलिये साधारण जीव कोई अलौकिक कार्य नहीं कर सकते; किन्तु सिद्ध तपस्वी-महात्मा विलक्षण

कार्य सहज ही में कर डालते हैं। इसलिये जप-तप आदि साधनों से मन की मलीनता नाश हो जाती है तथा आत्मा प्रकाशित हो उठती है और अपनी शक्तियों से कार्य करने में समर्थ होकर जीव दिव्य गति प्राप्त कर लेता है।

श्री विद्यादासजी तथा श्री रामवचनदासजी महाराज के साकेत पधारने के पश्चात् हमारे चरित्रनायक का मन अत्यंत उदास हो गया। कथावाचन आदि कार्यों में जरा भी चित्त नहीं लगता था। उस समय अयोध्या में अनेकों सिद्ध महात्मा और तपस्वी विराजमान थे, उनमें एक श्री सियारामशरणजी परमहंस तथा श्री रसरङ्गमणि जी बड़े रंगीले रसिक थे। ये दोनों ही महात्मा श्री रामजी को अपना सखा मानते थे। सखा-भावना इनलोगों की सिद्ध हो चुकी थी और सरकार पूर्ण कृपा करते थे।

एक दिन ये दोनों ही महात्मा हमारे चरित्रनायक के निकट आकर दण्डवत् करके कहने लगे—"प्रभो", हम आपकी कथा बहुत समय से सुनते हैं, आप सर्वदा प्रफुल्लित होकर अमृत वर्षाते रहते थे, किन्तु जब से आपके गुरुदेव साकेत पधारे हैं, तब से आप कुछ उदास रहते हैं, इसलिये हमलोगों को इच्छा है कि आप कुछ दिन चित्रकूट में भ्रमण कर आइये। हमलोग भी आपकी सेवा में साथ ही चलेंगे।"

अपने मन की बात उन दोनों महात्माओं से सुनकर आप कहने लगे—"आपलोग हमारे प्राणाधार के सखा हैं, आप

लोग अपने सखा की प्रेरणा से ही मेरे हित के लिये आये हैं। मैं आपके साथ अवश्य चित्रकूट चलूँगा, वहाँ पर श्री हनुमान जी को वाल्मीकीय रामायण का नवाह भी श्रवण कराऊँगा।"

चित्रकूट की यात्रा के लिये इन सिद्ध महापुरुषों ने प्रस्थान किया। चित्रकूट में आकर मंदाकिनी-गंगा में मज्जन करके श्री जानकीकुण्ड नामक स्थल पर आपने निवास किया। वहाँ पर नित्य-प्रति नवीन वन-बीथियों में विचरते हुए गिरि-कंदराओं की शोभा और ललित-लताओं से युक्त विचित्र वनिकाएँ देखते थे। भरतकूप, अनुसूया, हनुमानधारा, देवाङ्गना, गुप्तगोदावरी, बाँकेसिद्ध, पंचमुखीहनुमान, स्फटिक-शिला, सिरसावन आदि स्थानों के दर्शन करके श्री कामदगिरि की परिक्रमा भी की। कहीं बैठकर वन में शिलाओं पर तीनों ही महात्मा श्री सीतारामजी के विहार की लीलाओं का वर्णन करते थे, कहीं-कहीं विलक्षण चमत्कार देखकर अनुभव वर्णन करते थे। एक दिन दोनों सखाओं ने हमारे चरित्रनायक के चरणों में पड़कर कहा—"चित्रकूट का असली रूप कैसा है, कृपाकर आज दर्शन कराइये?" श्री महाराज ने कहा "मैं स्वयं नहीं जान सका कि इनका स्वरूप क्या है, फिर आपलोगों को कैसे दिखलाऊँ?"

महाराज की यह बात सुनकर वे और भी पीछे पड़ गये। सखा ही तो ठहरे, दोनों ही हठ करने लगे। अन्त में हारकर श्री महाराज ने कहा—"अच्छा! तो लक्ष्मण-पहाड़ी पर चलिये।"

लक्ष्मण-पहाड़ी पर आकर श्री महाराज ने कहा—"आपलोग यहाँ से चित्रकूट का दर्शन करके आँखें बंद कर लीजिये।"

लक्ष्मण-पहाड़ी पर से सामने चित्रकूट-पर्वत के उपर का कुछ दृश्य दिखलाई देता है। उन दोनों महात्माओं ने आँखें भर-भर चित्रकूट का शिखर देखा और आँखें बंद कर लीं। आँखें बंद करते ही उनको एक दिव्य प्रकाश देख पड़ा, उन-लोगों ने आँखें खोल दीं। जब आँखें खोली तो लक्ष्मण-पहाड़ी और सामने का चित्रकूट-पर्वत सब जगमगाता हुआ रत्नमय देख पड़ा। मणियों से भरे हुए उस पर्वत को देखा, तथा लताएँ और वृक्ष भी हरितमणिमय देख पड़े। हरितमणिमय लताओं में लालमणिमय पुष्प खिले हुए थे, पद्मरागमणिमय वृक्षों में इन्द्रनीलमणिमय पुष्प प्रफुल्लित थे। उन दिव्य वृक्षोंमें विचित्र फल भी लटक रहे थे; तथा नाना-प्रकार के रंगोंवाले पक्षी कूज रहे थे। झुंड-के-झुंड मृग और मयूर इधर-उधर विचर रहे थे।

श्री महाराज ने कहा—"आपलोगों ने अब दर्शन कर लिये होंगे? चलिये।"

वे दोनों सखाजी चल दिये, रास्ते भर वह पर्वत दिव्य रत्नमय दर्शित होता रहा। उस छटा को देख-देख कर दोनों ही उन्मत्त के सदृश्य होकर पद-गान करने लगते थे तथा गद्-गद् रोकर नेत्रों से जलधारा बहाने लगते थे। इतने में दोनों सखाओं के सखा चारों भइया भी हिरणों के

बच्चों के साथ खेलते देख पड़े। उनको देखते ही दोनों सखा दौड़कर हिरणों के झुंड में चले गये। वहाँ पर बड़ा खराब रास्ता था। सब हिरण इन दोनों को देखकर भाग चले।

हमारे चरित्रनायक ने जब इन दोनों की यह दशा देखी तब आपने इनको सावधान करने के लिये वह दिव्यता खीच ली। वे दोनों महात्मा सावधान हो गये। वह सम्पूर्ण दृश्य बदल गया। फिर वही प्राकृतिक दृश्य देख पड़ने लगा।

चित्रकूट में इन महात्माओं की बड़ी प्रसिद्धि हो गई। सुकृति सज्जन आकर सत्सग करते और दीक्षा ग्रहण करने के लिये उत्सुक होते। दोनों सखा हमारे चरित्रनायक से ही सबको दीक्षा दिलवाते थे।

एक दिन आप चन्द्रमा की खिली हुई चाँदनी देखकर दोनों सखाओं को साथ लेकर मन्दाकिनी के किनारे-किनारे बन में विचरते हुए स्फटिक शिला की ओर निकल गये। वहाँ पर वृक्षों से लिपटी हुई लताओं को हटाकर बीच से श्रीसीता-रामजी निकलते हुए दिखाई दिये और लताओं से फूल चुनने लगे। जब ये तीनों महात्मा पास पहुँचे तो वहाँ पर कोई भी नहीं था। इस प्रकार नित्य-प्रति नई-नई झाँकियों के दर्शन होते। कभी तो सघन तरु के नीचे पुष्प पल्लवों से सुसज्जित शय्या पर प्रिया-प्रियतम गलबहियाँ दिये बैठे नजर आते थे, कभी मन्दाकिनी में जल-क्रीड़ा करते हुए

दिखलाई देते थे। कभी वन में मृगों को धनुष-वाण लेकर डराते हुए देख पड़ते तथा कभी फूलों का शृंगार किये दोनों कमल नचाते हुए पास आनेवाले भ्रमरों को कमल से हटाते हुए देख पड़ते थे।

सन्ध्या समय बैठ कर तीनों महापुरुष अपने-अपने अनुभव सुनाकर आनन्द लुटते थे। दैवयोग से हमारे चरित्रनायक को एक दिन बड़े जोर से ज्वर आ गया। यह देखकर दोनों महात्मा कहने लगे—"इस जंगल में कोई औषधि भी उचित रूप से नहीं हो सकेगी, इसलिये अयोध्या अब चलना आवश्यक प्रतीत होता है।"

श्री महाराज ने कहा—'हमने संकल्प किया था कि चित्र-कूट में बाल्मीकीय रामायण श्री हनुमानजी को श्रवण करायेंगे, किन्तु अभी तक उसे प्रारम्भ नहीं किया था, सोचा था—"जब चलने लगेंगे तब करेंगे। सत्य कहता हूँ, मैं पाठ पूरा किये विना अयोध्या नहीं जा सकता।"

उस ज्वर ने बढ़ते-बढ़ते विशाल रूप धारण कर लिया। जंगल की जड़ी-बूटियाँ खिलाई गईं, किन्तु कोई लाभ न हुआ। सब यत्न करके हारकर दोनों महात्मा अयोध्या चलने के लिये महाराज से प्रार्थना करने लगे। तब महाराज ने कहा—"मैं कल से वाल्मीकीय रामायण का नवाह प्रारम्भ करूँगा। नव दिनों में पूरा करने के बाद चल सकता हूँ। मैं अपने निश्चय से कभी भी टल नहीं सकता।"

यह सुनकर दोनों महात्मा कहने लगे–"आपकी देह अत्यंत दुर्बल हो गई है, आपको दो सप्ताह लंघन करते हो चुके हैं, आप भला पाठ किस प्रकार करेंगे ?

यह सुनकर महाराज ने कहा—"मेरा शरीर तो अवश्य निर्बल है और यह कार्य शरीर से कदापि नहीं हो सकता, किन्तु मैं आत्मिक-शक्ति से यह कार्य करूँगा। आपलोग कल देख लेना। दूसरा गुप्त रहस्य यह है कि मैं श्री हनुमानजी की कृपा से नव दिन के लिये रोग को रोक लूँगा। नव दिनों तक आत्मिक-शक्ति से कार्य करके फिर रोग को भोग लूँगा। यह जितने दिन का भोग है, बिना भोगे छुटकारा मिलेगा ही नहीं। अभी रुक जायगा, पीछे उतने दिन फिर भोग लूँगा।"

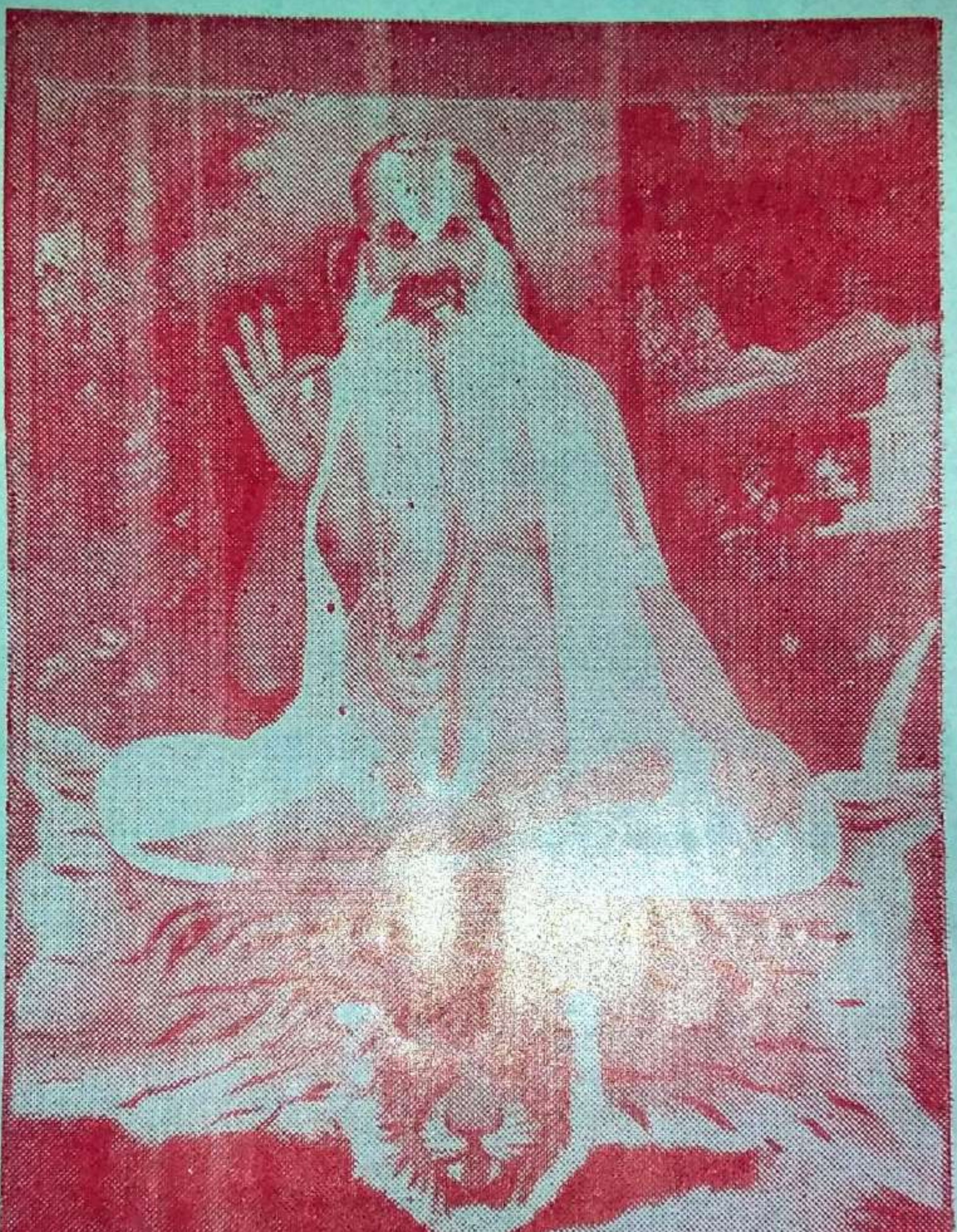
यह सुन कर सब आश्चर्य में पड़ गये। दूसरे दिन प्रातः काल ४ बजे उठकर कहने लगे—"मुझे मंदाकिनी स्नान कराइये।" दोनों संत उठाकर ले गये और मंदाकिनी में स्नान कराया। स्नान करके आपने नित्य–कृत्य उसी प्रकार किया, जैसे आप स्वस्थ दशा में नित्य करते थे। पश्चात् श्रीदास हनु-मानजी के मन्दिर में जाकर श्री बालमीकीय रामायण का नवाह पाठ प्रारंभ कर दिया। न जाने किस शक्ति से आप धारा-प्रवाह पाठ करने लगे। बीच में आपने जल तक नहीं लिया और ३ बजे तक लगातार पाठ सुनाते रहे। यह लीला देखकर सबको महान् आश्चर्य हुआ। तीसरे पहर पाठ पूर्ण करके आपने भोग लगाकर कुछ फल पाये।

ज्वर भी चला गया दुर्बलता भी चली गई और मुख-मण्डल पर विचित्र तेज छा गया। पश्चात् सन्ध्या समय दो घंटे लगातार सत्संग में भाषण करते रहे। इस प्रकार नव दिनों तक आत्मिक-शक्ति से आपने सम्पूर्ण वाल्मीकीय रामायण सुनाई। तदनन्तर विधिपूर्वक जप और हवन किया।

यह आत्मिक-शक्ति का विलक्षण कार्य देखकर दोनों सखा हँसते हुए कहने लगे—"महाराज! आप समर्थ हैं, 'कर्त्तुमकर्तुं अन्यथा कर्त्तुं समर्थ' हैं। आपकी महिमा हमलोग नहीं जान सके थे। अब आपकी लीला से हमें आप पर शंका होती है—पता नहीं, आप हैं कौन ?"

यह सुनकर महाराज कहने लगे—"आपलोगों के सखा जैसे सर्वज्ञ होकर भी हास्य-प्रिय होने के कारण सब से परिचय पूछा करते थे, वैसे ही आपलोग यदि मेरी हँसी उड़ायें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?"

—:०:—



स्वनामधन्य श्रीपूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित

पं० श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराज

श्री सरयू-आकर्षण

श्री चित्रकूट में अनुपम चरित्र करते हुए श्री महाराज ने नवाह् सम्पूर्ण किया। रात्रि में ३ बजे उठकर मानसी सेवा-ध्यान करने लगे। उस समय श्री हनुमानजी ने ध्यान में प्रकट होकर कहा—"तुमने बड़े प्रेम से नवाह् श्रवण कराया है, अब जो तुम्हारी अभिलाषा हो, मुझसे वरदान माँग लो।" श्री महाराज ने कहा—"मुझे केवल श्री राघवेन्द्र सरकार के चरण-कमलों की प्रेमाभक्ति प्रदान कीजिये। अन्य कोई वासना चित्त में कभी उदय न हो।"

एवमस्तु कहकर श्री अंजनीनन्दन सेवा-भावना में लगने का संकेत करके अदृश्य हो गये। प्रातःकाल होते ही ९ दिनों से रुका हुआ ज्वर फिर चढ़ आया। तब श्री रसरंगमणिजी ने तथा श्री परमहंसजी ने कहा—"अब आपकी नवाह् परायण की लालसा पूर्ण हो गई। कहिये, अब क्या आज्ञा है, अयोध्या चलें या और कोई नई लीला कीजियेगा।

श्री महाराज ने कहा—"आप हमारे ज्वर के उपाय के लिये अयोध्या जाने की चिन्ता न करें। यह ज्वर चार महीने और नव दिन तक रहेगा। इसलिये इसकी चिन्ता त्यागकर

आपलोग आनन्द से रहिये और मेरी तो इच्छा होती है कि काशी के दर्शन कर आयें, वह यहाँ से समीप है।"

श्री रसरंगमणिजी तैयार हो गये। परमहंसजी की चित्र-कूट में और रहने की रुचि थी, इसलिये ठहर गये। श्री रसरंगमणिजी के साथ महाराजजी काशी आये। ज्वर बराबर बना रहता था, किन्तु आप काशी में प्रसिद्ध स्थलों के दर्शन करते तथा सत्संग करते। इस प्रकार डेढ़ महीने के पश्चात् काशी से अयोध्या के लिये चल दिये।

अयोध्या में अपने स्थान मणिरामजी की छावनी में आकर बिराजमान हुए। आपका आगमन सुनकर सहस्रों संत-वृन्द दर्शन करने आने लगे। किन्तु आपको ज्वर के कारण अत्यन्त दुर्बलता हो गई थी। चलना-फिरना तक कठिन था। अयोध्या-निवासी नाना प्रकार के उपचार करने लगे, किन्तु किसी दवा से ज्वर दूर नहीं हुआ। आप इतने अधिक दुर्बल हो गये थे कि संतों को बड़ा क्लेश होने लगा।

एक दिन आप कहने लगे—"अब मेरी वृन्दावन जाकर ब्रह्मोत्सव देखने की इच्छा हो रही है। इसलिये आज ही जाऊँगा।

यह सुनकर रसरंगमणिजी ने कहा—"आप इतने प्रबल ज्वर में जर्जर-शरीर से आज ही वृन्दावन जाना चाहते हैं, यह ठीक नहीं है। ऐसी इच्छा न करें।

श्री महाराज ने कहा—"आप ज्वर की चिन्ता न करें। यह ज्वर आज ही सन्ध्या को उतरनेवाला है। आज ४ महीने और ६ दिन हो चुके हैं।"

ऐसा कहकर आप सब से विदा होकर वृन्दावन जाने को उसी समय उद्यत हो गये। प्रेमी संत आपको सवारी में बैठा कर दोपहर की ट्रेन से विदा किया। सन्ध्या समय गाड़ी लखनऊ में बदलनी पड़ती है, ज्योंही लखनऊ स्टेशन पर आप उतरे त्योंही ज्वर उतर गया। यह देखकर सब संत आनन्दित होकर प्लेटफार्म पर कीर्त्तन करने लगे।

श्री महाराजजी हर्षित होकर वृन्दावन आये और सेवाकुंज, वंशीघाट आदि स्थलों के दर्शन करके ब्रह्मोत्सव देखा तथा श्रीगोवर्धन, नंद-ग्राम, कामवन, बरसाना आदि के दर्शन करके शीघ्र ही अयोध्या लौट आये।

आपको नीरोग और खूब हृष्ट-पुष्ट देखकर सब संतों को अपार आनन्द हुआ। नित्य नये उत्सव होने लगे तथा पूर्ववत् अपूर्व उत्साह से कथा प्रारम्भ हुई। पुराणों के अतिरिक्त सिद्ध महात्माओं के रचे हुए रहस्यमय ग्रन्थों की कथाएँ भी आप श्रवण कराने लगे।

एक बार दैवयोग से श्री सरयूजी अयोध्या से ३ मील दूर चली गईं। श्रीरामघाट, श्रीजानकीघाट आदि स्थानों के महात्माओं को बड़ा कष्ट होने लगा। सरयू-स्नान के लिये

जाने-आने में ही एक पहर व्यतीत हो जाता था, नित्य-नियम में सैकड़ों संतों को बड़ा विक्षेप होता।

एक दिन सब संत आकर आपसे कहने लगे—"अयोध्या में हमसब के शिरोमणि आप ही हैं। आप ही हमारे प्रत्यक्ष भगवान् हैं, इसलिये हम आप से ही अपना कष्ट न सुनायें तो किससे सुनावें। दयामय! इस साल अयोध्याजी से सरयूजी बहुत दूर चली गई हैं। यह हमलोगों के अपराधों का ही परिणाम है, सब संतों को बड़ा कष्ट होता है। इसलिये आप कृपा कर श्री सरयूजी को निकट बुला लीजिये। आपके नित्य नये अलौकिक कार्य हमलोग देख रहे हैं। इसलिये आप सरयूजो को आकर्षित कर सकते हैं।"

इस प्रकार सब संतों की प्रार्थना सुनकर आपको दया आ गई। सन्ध्या समय सब संतों को लेकर आप श्री सरयू-तट पर पधारे। सादर प्रणाम करके स्नान किया और खड़े होकर, हाथ जोड़कर प्रेम-पूर्वक गद्गद स्वर से प्रार्थना करने लगे—"हे देवि! आपकी महिमा वेदों में विख्यात है। आप के जल के स्पर्श मात्र से प्राणी भगवद्भक्त होकर परमपद प्राप्त करता है। आप कलिकाल के पतितों के तारने के लिये प्रवल वेगवाली धारा उत्साह से बहा रही हैं। ये सब संत, आपके अयोध्या से दूर हट आने के कारण व्याकुल हो रहे हैं। इनके कष्ट को दूर कर दीजिये! यह सब घर-बार छोड़कर

आपके चरणों में आकर पड़े हैं। हे देवि ! दया करके इनका कष्ट दूर करो।"

इस प्रकार प्रार्थना करके आप संतों के साथ लौट आये। श्री सरयूजी प्रसन्न हो गईं। उसी महीने में बड़े वेग से कटाव करके श्री सरयूजी बढ़ती हुई अयोध्या के निकट आ गईं। एक महीने के भीतर ही श्री सरयूजी को घाटों पर आई हुई देखकर सब संत आनन्द से उछलने लगे। उस दिन से श्री महाराज के वाक्य ध्रुव सत्य माने जाने लगे। संतों ने धूम-धाम से नित्य-प्रति सरयू-तट पर महोत्सव करना आरम्भ कर दिया। कभी नौका में बैठाकर लीलास्वरूपों को विहार कराते, कभी आरती-स्तोत्र आदि गाकर पूजन करते।

—:०:—

न्याय

एक बार अयोध्या में दो बड़े-बड़े विद्वानों में शास्त्रार्थ छिड़ गया। प्रत्येक विद्वान् अपने-अपने इष्टदेव को बड़ा सिद्ध करने की चेष्टा करते थे। इस प्रकार वाद-विवाद करते हुए बहुत दिन व्यतीत हो गये, किन्तु कोई भी नहीं हारा। अन्त में न्याय कराने की लालसा से दोनों ही महाराजजी के पास आये। दोनों ने ही कहा—"आप जो न्याय कर देंगे, हमलोग उसे सहर्ष स्वीकार करेंगे।

श्री महाराज ने कहा—"भगवान के सभी रूप और सभी नाम अतुलित प्रभावशाली हैं। उनमें छोटा बड़ा किसे बतलाया जाय? इसलिये यह न्याय भगवान् पर ही निर्भर कर दिया जाय।"

ऐसा कहकर महाराज ने एक काँटा मँगवाया—जिससे स्वर्ण की तौल होती है। उस काँटे पर बराबर काटकर दो कागजों में उन दोनों के इष्टदेवों के नाम उनसे ही लिखवाया। दोनों पल्लों में दोनों कागज रख दिये गये। उनमें जिस कागज में श्री रामनाम लिखा था, वह पलड़ा नीचे झुक गया। यह देखकर विपक्षी को फिर भी विश्वास न हुआ। उसने सोचा, शायद इस काँटे में कोई छल है। इसलिये उसने अपने हाथ में

काँटा लेकर दूसरी ओर रामनामवाला कागज रख दिया और इधर अपने इष्टदेव के नामवाला कागज रक्खा, तो उधर भी रामनामवाला पलड़ा नीचे हो गया। इस प्रकार कई बार इधर-उधर रखकर उसने जब देख लिया कि श्री रामनाम का ही पलड़ा भारी हो जाता है, तब वह महाराज के चरणों में पड़ गया और शरणागत होकर उपदेश ग्रहण किया। उस दिन से उनके हृदय में श्री रामनाम की महिमा ऐसी बसी कि वे सोते-जागते निरन्तर श्री रामनाम रटने लगे।

एक बार श्री मणिरामजी को छावनी के महन्त श्री वैष्णवदासजी जब साकेत पधारने लगे तो हमारे चरित्र-नायक को बुलाकर स्थान की कुंजियाँ सौंप दीं। उनके साकेत पधारने के पश्चात् महाराज की अभिलाषा हुई कि श्री वैष्णव-दासजी के शिष्यों में से किसी को महन्त बना दें। किन्तु जितने उनके शिष्य थे, उनमें सबसे अधिक योग्य रामचरणदासजी थे। इनको किसीने पहचाना नहीं था। हमारे श्री महाराज ने इनको ही बुलाकर महन्त बनाकर गद्दी पर बैठाया। महाराज ने कहा—"केवल व्यवहार की चतुरता और विद्या तथा कुल-शील आदि गुण ही काफी नहीं, सबसे बड़ी आवश्यक वस्तु भक्ति है। जिनके हृदय में दीनता, सरलता और भक्ति है, वही संत सेवा कर सकता है, उसे ही महन्त बनाना चाहिये। महन्त तो केवल संत-सेवा के लिये ही बनाये जाते हैं।

स्थान-निर्माण

श्री मणिरामजी की छावनी के निकट ही श्री जानकीघाट पर हमारे चरित्रनायक के गुरु-बन्धु श्री कल्याणदासजी रहते थे। उन्होंने भगवत्प्रेरणा से आठ बीघे जमीन हमारे चरित्रनायक के नाम से खरीदी और सुन्दर कुटी बनवाकर श्री महाराज से रहने के लिये आग्रह किया, किन्तु महाराज ने निज स्थान बना कर प्रपंच में पड़ना स्वीकार नहीं किया। कुछ ही दिनों में श्री कल्याणदासजी का साकेत-वास हो गया। अन्त समय में वे वह कुटी महाराजजी को सौंप गये।

एक दिन ध्यान करते समय श्री हनुमानजी ने कहा—"यह स्थान जानकी घाट पर आपके भजन के लिये ही बनवाया गया है। वहीं पर चलकर अब जीवों के कल्याण के लिये निवास कीजिये।"

यह दिव्य वाणी ध्यान में सुनकर शीघ्र ही आप जानकी-घाट पर कुटी में चले आये। वि० सं० १९५३ में आपनें जानकीघाट पर निज स्थान में रहना प्रारम्भ किया। कुछ संत आकर महाराज की सेवा में साथ ही रहने लगे।

महाराज के प्रभाव से भक्तवृन्द आने लगे और उपदेशा-मृत से अमर होने लगे। उन्हीं दिनों एक परम संत-सेवी

पं० श्यामसुन्दरजी आये। उनके पास कई सौ रुपये थे। उन्होंने अपने रुपये महाराजजी को रखने के लिये दे दिये। महाराजजी ने उनके रुपये भीतर ठाकुरजी के छोटे से मंदिर में रख दिये।

इस बात का पता एक चोर को लग गया। उसने रात्रि में आकर पीछे से कुटी फोड़ डाली और मंदिर में घुसकर ज्योंही रुपयों की थैली उठाई त्योंही वह अंधा हो गया। उसकी आँखें बेकार हो गईं। वह कुटी से निकलने के लिये फोड़ा हुआ मार्ग खोजता रहा, पर उसे मार्ग न मिला। अन्त में वह बहुत घबड़ा गया। उसने थैली छोड़ दी और भगवान् से प्रार्थना करने लगा तथा उसी समय—"आज से चोरी न करूँगा" यह सत्य संकल्प किया। दृढ़ संकल्प करते ही उसकी आँखें खुल गईं और वह आनंदपूर्वक अपने गृह को लौट गया।

प्रातःकाल कुटी फूटी देखी गई, किन्तु सब वस्तुएँ ज्यों-की-त्यों रक्खी थीं। यह देख सब को बड़ा विस्मय हुआ। तीसरे दिन वही चोर आकर श्री महाराज के चरणों में पड़ा और अपना सच्चा-सच्चा हाल बताकर क्षमा मांगने लगा। महाराज उसके ऊपर बहुत प्रसन्न हुए तथा सुन्दर शिक्षा देकर कृतार्थ कर दिया। इस प्रकार श्री हनुमानजी महाराजजी की कुटी की निरन्तर रक्षा करते रहते थे।

—:o:—

विशेषोन्नति

स्थान निर्माण हो जाने पर महाराजजी के प्रेमियों को बड़ा आनन्द हुआ। निरन्तर सत्सङ्ग-कथा-कीर्त्तन और भगवत्सेवा तथा संत-सेवा होने लगी। किसी शिष्य ने बालभोग के लिये प्रतिमास बन्धान कर दिया तो किसी ने अन्नादि भेजना स्वीकार किया।

फैजाबाद के अग्रवाल सीतारामदासजी एकबार आकर महाराजजी से कहने लगे—"मेरे अस्सी हजार रुपये एक सेठ के पास रक्खे थे, वह अब देने से इनकार करता है। यदि वे रुपये न मिले तो मैं बिलकुल कंगाल हो जाऊँगा। मुझे दरिद्रता के सागर में डूबने से बचाइये।"

महाराजजी ने उसको आशीर्वाद देकर विदा किया—"जाओ तुम्हारा धन तुम्हें अवश्य मिल जायगा।"

महाराजजी को कृपा से उनके सब रुपये मिल गये। वह अग्रवालजी आकर चरणों में पड़े और १० साधुओं के लिये नित्य-प्रति का भोजन-खर्च भेजने का प्रबंध कर दिया। बराबर उनका द्रव्य महाराजजी के पास संत-सेवा के लिये आता रहा। श्री महाराजजी ने १० भजनानन्दी साधुओं को स्थान में रख लिया और कीर्त्तन का प्रोग्राम बना दिया।

एक दिन सब संतों ने कहा—"महाराजजी! स्थान बहुत छोटा है, इतना बड़ा स्थान बन जाय कि जिसमें १०० संत निवास कर सकें।

उन दिनों महाराजजी के पास जो शिष्यगण आते थे, उनलोगों ने भी यही आग्रह किया। तब महाराजजी ने एक

ठेकेदार को बुलाकर स्थान बनवाना प्रारम्भ कर दिया। उस ठेकेदार ने जब सम्पूर्ण स्थान बना दिया तव हिसाब माँगा। महाराजजी के पास जितने रुपये उस समय थे सब दे दिये, फिर भी पाँच सौ रुपये उस ठेकेदार को देने बाकी रह गये। महाराजजी को ५०० रुपये की चिन्ता हो गई।

उसी समय एक पंजाबी आया और एक लिफाफा देकर कहने लगा—"महाराजजी! इसे रख लीजिये। मै सरयू-स्नान कर आऊँ, तब वार्त्तालाप करूँगा।" तीन दिन हो गये, किन्तु वह पंजाबी लौटकर नहीं आया। तीसरे दिन स्वप्न में श्री हनुमानजी ने कहा—"मैं ही पंजावी का वेष बनाकर तुम्हें रुपये देने गया था वे रुपये उस ठेकेदार को दे दो।"

प्रातःकाल महाराजजो ने ठेकेदार को बुलाकर रुपये दे दिये। इस प्रकार क्षण-क्षण पर श्री हनुमानजी रक्षा करने लगे। स्थान खूब विशाल बन गया।

उस विशाल स्थान में धीरे-धीरे सैकड़ों संत निवास करने लगे। सब का कुल खर्च महाराजजी देते थे। पुजारी, भण्डारी, आदि सब का खर्च महीने में हजारों रुपये हो जाते थे, पता नहीं, वे रुपये कहाँ से आते थे। नित्यप्रति १०० से अधिक संतों को दोनों वक्त प्रसाद पवाया जाता था। मंदिर में चौबीसो घंटे अखण्ड कीर्त्तन होता रहता था। दूर-दूर से सैकड़ों यात्री नित्यप्रति आ-आकर आपकी शरण-ग्रहण करते तथा द्रव्य भेंट करते थे। आर्त, दुःखी, अनेक व्यक्तियों से पीड़ित तथा नाना कामनायें लेकर आनेवाले सभी व्यक्तियों के मनोरथ यहाँ सफल होते थे। इस प्रकार देश-भर में आपको प्रसिद्धि हो गई।

—:०:—

श्री रामार्चा-प्रचार

भगवद्भजन में प्रेम होना बड़ा दुर्लभ है, यह सौभाग्य तो किसो विरले पुण्यवान् को ही प्राप्त होता है। किन्तु, प्रायः देखा जाता है कि सकाम भावना करनेवाले बड़ी आतुरता और श्रद्धा-भक्ति से भजन में तत्पर हो जाते हैं। आर्त होकर पुकारने पर अन्तरात्मा से जो आवाज निकलती है, वह अन्तर्यामो के सिंहासन को हिला देती है। इसलिये जो माया-मोह से जकड़े हुए वासना-ग्रस्त प्राणी हैं, उनकी महात्माजन पहले सकामता से ही भजन करने का अभ्यास कराते हैं। जब सकामता से भजन करते-करते भजन में रुचि हो जाती है, तब भजन का स्वभाव वन जाता है। क्रमशः भजन से पाप जब धुलने लगते हैं तब निष्काम भावना स्वयं ही उदय हो जाती है और निर्मल भक्ति प्राप्त होकर परमात्मा के साक्षात्-कार के लिये प्रबल लालसा जाग्रत हो उठती है। क्योंकि—

"स्वारथ परमारथ सुलभ, राम नाम के प्रेम।"

एक दिन हमारे चरित्रनायक प्रातःकाल भजन-ध्यान में निमग्न थे। सहसा स्फुरणा हुई कि जिस प्रकार सत्यनारायण की कथा का घर-घर में प्रचार है, उसी तरह से श्री रामार्चा

की कथा का प्रचार घर-घर में क्यों नहीं है। यह रामार्चा भी प्राचीन ग्रंथ है और इसका प्रभाव भी प्रत्यक्ष देखने में आता है, किन्तु इसको थोड़े-से वैष्णवों के अतिरिक्त संसार में सब नहीं जानते। इसलिये इसका प्रचार करना चाहिये।

दूसरे दिन आप श्री सरयू-स्नान करने गये। वहाँ मार्ग में एक अत्यन्त दीन-दुर्बल-व्याकुल कँगाल ने रोते-रोते आपके चरण पकड़ लिये और काँपते हुए अपनी वेदना सुनाने की चेष्टा करने लगा, किन्तु अति विकलता के कारण वह ठीक-ठीक बोल भी नहीं सकता था। तब महाराजजी ने उसे सावधान करते हुए कहा—"तुम धैर्य धारण करो, मैं तुम्हारे दुःख को दूर करने की चेष्टा करूँगा। तुम मध्याह्न में मेरे पास आकर अपना सब वृत्तान्त सुनाना।"

श्री महाराजजी लौटकर आसन पर आ गये। वह दुःखी साधु मध्याह्न में आया और इस प्रकार अपनी कथा कहने लगा—"मेरा गया जिला में स्थान है। मेरे पास सम्पत्ति थी, तथा लोगों में सम्मान था। मेरा नाम हनुमानदास है। मुझे बहुत-सा धन भेंट में मिला, उसको मैंने भगवत्सेवा में नहीं लगाया, जोड़-जोड़ कर रखता गया, ज्यों-ज्यों धन मिलता गया त्यों-त्यों तृष्णा भी बढ़ती गई। मुझे यही इच्छा बढ़ी कि मैं लाख रुपया एकत्रित कर लूँ। यदनन्तर मैंने लाभ की लालसा से अपनी सम्पत्ति को व्याज पर देना प्रारम्भ

किया। एक दलाल मुझसे मिलकर कसाइयों को रुपया दिलवाने लगा। तब उन पशु-घातकों का व्यापार चलने लगा। वे लोग जितना रुपया ले जाते उससे सवाया दे जाते। इस प्रकार द्रव्य निरन्तर बढ़ते देखकर मुझे बड़ा हर्ष होता था। मैं यद्यपि यह समझता था कि इससे पशुओं की हिंसा बढ़ती है, तो भी स्वार्थवश मैं धर्माधर्म का विचार त्यागकर धन इकट्ठा करने लगा।

धीरे-धीरे मेरी बुद्धि विषयों की ओर आकर्षित हुई। मेरे मित्रगण मेरे पास धन देख, मुझे हर समय घेरे रहते थे और मुझे प्रसन्न करने की चेष्टाएँ किया करते थे। उनलोगों के साथ मैं नाटक, सिनेमा, नाच-रंग आदि देखता तथा सदा प्रफुल्लित रहा करता था। साथी-मित्रों की सहायता से मेरे पास नवयौवनवाली नई-नई मनोरम रमणियाँ भी आ जाती थीं। इस प्रकार मैं हास-विलास में रत रहने लगा। इसके पश्चात् मैं नशेबाजों में भी जाने लगा और असत्य बोलना तथा जुआ खेलना मेरा व्यसन बन गया। मैं बड़ा चालाक था, अन्य लोगों का धन भी हड़प जाता था।

इस प्रकार निरन्तर मैं अपार पाप करता रहा। उस जवानी के जोश में मौज करते हुए बहुत वर्ष क्षण के समान व्यतीत हो गये। तदनन्तर पापों का घड़ा भरकर छलकने लगा। एक ऐसा मुकदमा मुझपर चला कि मेरा सब धन उसमें खर्च हो गया। मेरी इज्जत चली गई और शान चली

गई। मेरे मित्रों के पास जहाँ-जहाँ मेरा धन रक्खा था, सबों ने हजम कर लिया। इस तरह से निर्धन और ऋणी हो जाने पर मेरे मित्रों ने मुझे त्याग दिया। मैं किसी प्रकार जेल जाने से बच गया, किन्तु दैवी व्याधियों ने बड़ी पीड़ा पहुँचाना प्रारंभ किया। गुप्त बीमारियों ने मुझे व्याकुल कर दिया। अस्पतालों में जा-जाकर इलाज भी कराया, किन्तु नित्य नई बीमारियाँ बढ़ती ही गईं। अब दिन-रात अपने पापों से हृदय जलता रहता है। कहीं भी शान्ति नहीं मिलती। जिसके पास जाकर अपनी विपत्ति सुनाता हूँ, वही मेरी हँसी उड़ाने लगता है और अपने पास बैठाने से घृणा करता है। मुझे भिक्षा भी माँगने से नहीं मिलती। इसलिये मैंने अयोध्या में आकर अपनी आत्मा की शान्ति के लिये यज्ञ किये, किन्तु मेरी व्याधियाँ बढ़ती ही गईं। व्याकुल होकर आज मैंने आत्मघात करने का निश्चय कर लिया और श्री सरयू में डूबने चला। जंगल में एकान्त घाट पर जाकर मैं ज्योंही सरयू-जल में कूद पड़ा, त्योंही एक तेज-पुंज महात्मा प्रकट हो गये और मेरा हाथ पकड़ कर सरयू-जल में डूबते हुए मुझको बाहर निकाल लिया। सावधान करके मुझसे बोले—तू इस प्रकार आत्मघात मत कर! श्री जानकीघाट पर जगद्गुरु श्री रामवल्लभाशरणजी महाराज के पास जा, वे तेरा दुःख दूर कर देंगे। वे भगवद्विभूति धारण कर इस समय संसार के कल्याण के लिये अवतरित हुए हैं।

हे प्रभो! मैं उन महात्मा की आज्ञा से आपकी शरण में आया हूँ।"

यह सुनकर महाराजजी ने कहा—"यद्यपि तुम्हारे अपराध अगाध हैं, किन्तु करुणामय श्री सीतारामजी यदि कृपादृष्टि

फेरे दें तो असंख्य अघ-जाल नाश हो सकते हैं। इसलिये तुम श्रीरामार्चा की कथा श्रवण करो। बस, उससे ही तुम्हारा उधार हो जायगा।"

श्री महाराजजी की आज्ञा शिरोधार्य करके उसने अपने पास बचे हुए कुछ रुपयों से फल, फूल, नैवेद्य आदि सामग्री एकत्रित की। श्री महाराजजी ने विधिपूर्वक श्री सीताराम जी का पूजन उससे करवाया तथा श्रीरामार्चा-कथा श्रवण कराकर सब संतों को पंचामृत तथा लड्डू प्रसाद बँटवाया। बड़ी श्रद्धा-भक्ति से हनुमानदासजी ने रामार्चा करवाकर स्वयं भी प्रसाद ग्रहण किया। प्रसाद और पंचामृत पाते ही हृदय की जलन दूर हो गई और अपार शान्ति का अनुभव होने लगा। श्री महाराजजी ने कहा—"बस, अब तुम्हारा कल्याण हो गया। तुम अब इन्द्रियजित होकर श्री सीतारामजी का भजन करो।"

कुछ ही दिनों में हनुमानदास के सब रोग दूर हो गये तथा उनका बहुत-सा धन उनके मित्रों के पास था, जिसे देने से उनलोगों ने इनकार कर दिया था, वह सब धन उनके मित्र आकर वापस कर गये। क्योंकि श्री हनुमानजी ने उनलोंगों को डरा-डरा कर स्वप्न में प्रेरणा की।

इस प्रकार वह साधु हनुमानदासजी परम सुखी होकर सच्चे साधु बन गये। महाराजजी की सेवा में बराबर आते तथा श्रीरामार्चा पुनः-पुनः कराते रहते। इनका दुःख दूर हुआ देखकर सबको श्रीरामार्चा-कथा पर अत्यंत विश्वास हो गया। नित्य नये भक्त आते और श्रीरामार्चा-कथा श्रवण कर अपने मनोरथों को प्राप्त करते थे।

—:०:—

अमोघ अस्त्र

श्री बजरंगदास नाम के एक बड़े विद्वान् महात्मा अयोध्या में रहते थे। वे बड़े इन्द्रियजित और सभी कार्यों में चतुर थे। उनको सेवकों के द्वारा सहस्रों रुपये प्राप्त होते थे। उन्होंने एक बार अपना सब द्रव्य एक वैश्य के यहाँ रख दिया और आप एकान्त में भजन करने लगे। एक बार आपको कुछ पुस्तकें खरीदने की आवश्यकता पड़ी तब आपने उस वैश्य से अपने रुपयों में से कुछ द्रव्य माँगा। तब वह कहने लगा— "आपने मेरे पास रुपये कब रक्खे थे? साधू होकर मुझपर झूठ आरोप करते हो? चले आओ यहाँ से।"

उस वैश्य सेठ की यह बात सुनकर आपको बड़ा आश्चर्य हुआ। बजरङ्गदासजी ने बहुत उपाय किये, किन्तु किसी प्रकार भी उसने रुपये नहीं दिये और साफ नकार गया।

अन्त में खर्च से अत्यंत तंग हो गये और उनकी ठाकुर-सेवा में भी त्रुटि होने लगी, तब संतों की राय से आप श्री महाराजजी के पास आये और अपनी विपत्ति कह सुनाई। महाराजजी ने कहा—"इसमें कौन बड़ी बात है, जिसके लिये इतनी चिन्ता करते हो। आप श्रीरामार्चा कराइये, आपका सब क्लेश दूर हो जायेगा।"

श्री बजरङ्गदासजी ने आज्ञा शिरोधार्य करके श्रीरामार्चा

के लिये विशाल प्रबन्ध किया। श्री महाराजजी ने विधिपूर्वक पूजन करवाकर श्रीरामार्चा-कथा श्रवण कराई। खूब प्रसाद बँटवाया गया। समाप्ति पर महाराजजी ने कहा—"जाओ तुम्हारा काम बन गया, बड़ी श्रद्धा से तुमने श्रीरामार्चा करवाई है। भगवान् को श्रद्धा और सच्चा प्रेम ही प्रिय है।

इधर श्रीरामार्चा समाप्त हुई और उधर दूसरे ही दिन उस वैश्य सेठ के पेट में बड़े जोरों से दर्द उठा। उस शूल से यहाँ तक व्याकुलता बढ़ी कि वह मरणासन्न हो गया और रात्रि में उसकी नाड़ी भी छूट गई। उसी दशा में उसने देखा कि यमदूत कह रहे हैं—"तूने महात्मा बजरङ्गदास का द्रव्य बेईमानी से सब हजम कर लिया है। इसलिये तू अभी मर जायगा और नरक में बड़े क्लेश पायगा। यदि तू अब भी उन महात्मा को बुलवाकर उनके द्रव्य से दूना धन देकर प्रसन्न करले तो तेरे प्राण बच सकते हैं।"

यह वाक्य सुनकर उसको चेत हुआ और अपनी करनी पर पश्चाताप करने लगा। उसी समय उसे होश आ गये और शय्या पर लेटे-ही-लेटे कहने लगा—"अभी-अभी महात्मा बजरङ्गदासजी को बुलाओ तो मेरे प्राण बच सकते हैं।" यह बात सुनकर उसके परिवारवालों ने शीघ्र ही महात्माजी को बुलवाया। दयालु हृदय महात्माजी उसी समय चले आये।

उस वैश्य सेठ ने चरणों में पड़कर अपने अपराध के लिये क्षमा याचना की और उनके रुपयों से दूने रुपये उसी समय

मँगवा कर सम्मुख ढेर लगा दिया। यह दृश्य देख महात्माजी को श्रीरामार्चा के प्रभाव का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। महात्माजी ने कहा—"मैं दूनी सम्पत्ति नहीं ले सकता, मैं तो उतना ही लूँगा, जितना कि मैंने आपके पास रक्खा था, अधिक लेना दोष है।"

यह सुनकर वह वैश्य घबरा उठा। उसने कहा—"महाराज ! मुझे दूना द्रव्य देने के लिये दैवी आज्ञा हुई है, इसलिये यदि आप दूना द्रव्य नहीं लेंगे तो मेरे प्राण नहीं बचेंगे। इसलिये स्वीकार कर लें।"

दयालु महात्माजी ने स्वीकार कर लिया और श्री महाराजजी के प्रभाव की महिमा संतों की सभा में आकर वर्णन की। श्री महाराजजी ने कहा—"यह श्रीरामार्चा का ऐसा ही प्रभाव है, इस श्रीरामार्चा के कराने से अवश्य ही अभीष्ट वस्तु प्राप्त होती है। कैसा भी कठिन क्लेश हो, इससे दूर हो जायगा।

इस प्रकार नित्य नये विलक्षण चमत्कार श्रीरामार्चा के प्रभाव से होने लगे। श्री महाराजजी की लीला में श्रीरामार्चा ही एक प्रधान अस्त्र था। यह अस्त्र ब्रह्मास्त्र के समान अमोघ था। छोटे-छोटे विघ्नों से लेकर महा विकट भवजाल को काटने में यह अस्त्र अव्यर्थ सिद्ध हुआ। करोड़ों जंजाली जीव रामार्चा कराते-कराते शुद्ध निर्मल भक्त बन गये।

आदर्श-आचरण

हमारे चरित्रनायक साधारण महापुरुष थे, ऐसा कहना इनके अलौकिक चरित्रों को देखकर नहीं बनता। जो भी आपके दर्शन करता वही कह उठता था कि यह संत के वेष में साक्षात् भगवान् हैं। आपके जितने भी आचरण थे, वे सब लोक-शिक्षा के लिये आदर्श-स्वरूप थे।

आपका गौरवर्ण श्री विग्रह तथा कोमल पद-कमल, मधुर-मुस्कान और कृपाभरी चितवन देखकर सहसा हृदय प्रफुल्लित हो उठता था। आप सदा हो प्रसन्न बदन रहते थे।

प्रातःकाल ३ बजे से उठकर एकान्त ध्यान में निमग्न होकर आसन पर हो बैठे रहते थे। पश्चात् सूर्योदय से पहले ही स्नान-कुंज में जाकर नित्य-कृत्यों से निवृत्त हो श्री सरयूजी पर पधारते और स्नान करके सन्ध्या-वन्दन करते। वहाँ से मन-ही-मन कुछ पाठ करते हुए लौटते। मार्ग में सैकड़ों संत आपको दण्डवत् और जय-जयकार करते। आप सबको प्रसन्न करते हुए स्थान पर आकर तिलक आदि करते। सिद्ध आसन से बिराजमान होकर जप करके नित्य-नियम पाठ आदि तथा श्री लालजी की सेवा करते। इस प्रकार लगभग ११ बज जाते। ११ बजे फिर दूसरा स्नान करते। पश्चात् आनेवाले

सज्जनों का स्वागत करते हुए विद्यार्थियों को व्याकरण तथा अन्य ग्रंथ पढ़ाते। उसके बाद राजभोग के समय पंगत में नीताराम होने पर पंगत-शाला में जाते, वहाँ पर सैकड़ों सन्तों की पंगत में आप चारों ओर विचरते हुए प्रत्येक संत को प्रसन्न करते तथा किसी-किसी को स्वयं अपने कर-कमलों से परोस-परोस कर अधिक प्रसाद पवाने को लीला करने लगते, कहते—"अजी ! लो इतना और लो।"

मध्याह्न के समय आप विश्राम के बहाने भावनामय ग्रन्थों का अनुशीलन करते।

मध्याह्न के वाद बड़े-बड़े विद्यार्थियों को बड़े-बड़े ग्रन्थों का अध्ययन कराते तथा अनेक विद्वानों का समाधान करते। ग्रन्थों की टीका स्वयं वोल-बोलकर लिखाते तथा उस समय सम्पादकों का आगमन, लेखकों का जमघट, मुद्रित होनेवाले ग्रन्थों का प्रूफ-शोधन और ग्रन्थकारों का अध्ययन ये सब मिल-कर अपूर्व शोभा देते थे। इस प्रकार सबको संतोष दे करके ४ बजे फिर स्नान के लिये पधारते। स्नान के समय भी आपके साथ अनेको प्रेमी पीछे-पीछे लगे चले जाते। स्नान के बाद तिलक करके ४॥ बजे कथा-मण्डप में पधार कर दिव्य अनुभवमयी कथा-सुधा की वर्षा करते।

कथा के पश्चात् ऊपर खुली जगह में विराजमान हो जाते। वहाँ पर प्रेमी-चातकों की पिपासा दूर करने के लिये नित्य

सत्संग में गुप्त-रहस्यमय प्रश्नों के उत्तर देते। उस समय संत-महंत, विद्वान्-पंडित, राजा-महाराजा और रसिक-समाज सभी आकर विराजते थे। ३ घंटे इस प्रकार सत्संग होता। तदनन्तर निज मन्दिर में आरती होती। आरती में आप स्वयं जाकर चौकठ के समीप खड़े होकर भगवान् की झाँकी निहारते हुए प्रेमाश्रु बहाते रहते। आरती के बाद आपके स्थान के ही सैकड़ों संत स्तुति-गान करते। वह गान बड़ा मनोहर होता था। उसके बाद स्वयं ही कर-कमलों से चरणामृत बाँटते। कभी-कभी रामार्चा के लड्डू सबको बाँटते।

पश्चात् सब संतों को ब्यालू कराकर स्वयं करते। चटाई बिछी रहती, उसी पर लेट कर शिष्यों तथा सत्संगियों को उपदेश देते। इस समय मार्मिक प्रश्नों के भी उत्तर देते। तदनन्तर भावना में निमग्न होकर ध्यान करते। इस प्रकार रात्रि के ११॥ बज जाते। ध्यान करने के बाद शयन करते और पुनः ३ बजे उठकर बैठ जाते।

इस प्रकार आपकी दिनचर्य्या महर्षियों के सदृश आदर्श उपस्थित करती थी।

आपका शील-स्वभाव भी ऐसा अलौकिक था कि उसकी उपमा संसार में कहीं मिलती ही नहीं। हाँ, एक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का स्वभाव ऐसा ही अवश्य था। हमारे चरित्र-नायक इतने सरल थे कि एक वर्ष का छोटा बालक भी इतना

भोला नहीं होता। आपमें जीवन-भर कभी क्रोध नहीं देखा गया। सर्वदा प्रसन्न रहते और कोई कैसी भी बात सुनाता, आप बड़े धीरे से "हाँ" कह देते। वैष्णव मात्र में आप भगवद्भाव रखते, निरन्तर संतों की सेवा का ही आपने व्रत ले रक्खा था। जो कुछ सुन्दर वस्त्र आदि पदार्थ आते, सब आप साधुओं में यथा योग्य वितरण करते रहते। स्थान में एक नवीन साधु आया और उसने स्थान का कम्बल चुरा लिया। उसकी चोरी पकड़ ली गई और शिकायत महाराजजी के पास आई। आपने कहा—"ऐसा मत कहो कि साधु चोरी करते हैं, ऐसे कहो कि संत भगवान ने कम्बल ले लिया। सब वस्तु यहाँ साधुओं की ही होती है।"

यह सुनकर वह नवीन साधु गद्‌गद् हो गया और सदा के लिये सच्चा साधु होकर भजन करने लगा। आपके यहाँ अमीर-गरीब और छोटे-बड़े सब एक दृष्टि से देखे जाते। कोई विद्वान् कठिन ग्रन्थ पढ़ने आता तो उसे भी पढ़ाते और कोई नौसिखिया सुदामा बारहखड़ी और ककहरा पढ़ने आता तो उसे भी वैसे ही प्रेम से पढ़ाते। यदि कोई आपको प्रेम से घर बुलाता तो प्रभुता भूलकर उसके घर चले जाते। नीच-से-नीच भी क्यों न हो, आप उससे बातचीत करते। आपको शील-संकोच इतना था कि प्रिय-से-प्रिय वस्तु, माँगने पर आप फौरन् दे देते थे। "ना" करना तो आप जानते ही नहीं थे। उदारता की सीमा के दर्शन आपमें ही होते थे।

कोई किसी भी धर्म का अवलम्बी आपके पास आता, वह प्रसन्न होकर लौटता। एक बार राय जालिमसिंहजी, रिटायर्ड पी० एम० जी०, ग्वालियर-स्टेट आये। वे कट्टर अद्वैतवादी थे। आपके पास आते ही अनुपम आनन्द उमड़ चला। श्री जालिमसिंहजी सत्संग करके ऐसे मुग्ध हुए कि सारे विश्व में आनन्द-समुद्र लहराता हुआ नजर आने लगा।

इसी प्रकार जब मुजफ्फरपुर में श्रीरूपकला-हरिनाम-यश-सम्मेलन में आप सभापति के आसन पर आसीन थे, उस समय एक अद्वितीय विद्वान् दण्डी सन्यासीजी आये। पता नहीं किस विषय पर वे वार्त्तालाप करने लगे। श्री महाराजजी और वे संन्यासीजी दोनों ही इतनी कठिन संस्कृत भाषा बोलते थे कि पास बैठे हुए पंडित लोग भी नहीं समझ सके। कई घंटे तक गूढ़ वार्त्तालाप होता रहा। अन्त में वे सन्यासीजी बड़े प्रसन्न होकर गये और दूसरे दिन बहुत-सी मिठाई, फल-फूल लेकर आये और महाराजजी को समर्पण कर दण्डवत की।

इस प्रकार आपके गुण अनंत थे। इसीलिये आपको सब संत अनंत कहते थे। यहाँ अत्यन्त संक्षेप में, संकेत में गुणों का वर्णन किया गया है।

—:०:—

कैङ्कर्य-निष्ठा

श्री वैष्णव सम्प्रदाय में भगवद्भागवत कैङ्कर्य की बड़ी प्रतिष्ठा है। श्री वैष्णव सम्प्रदाय ही कैङ्कर्य प्रधान (सेवा-भाव निष्ठ)सम्प्रदाय है। हमारे चरित्रनायक इस सिद्धान्त के मूर्तिमान् आदर्श थे, आलस्य तो आपको छू भी नहीं सका था। सत्तर वर्ष की वृद्धावस्था में भी कोई आप से तुलसीदल भी माँगे तो स्वयं उठकर दे देते थे। बड़े-बड़े राजा-महाराजा और अफसर जिनके चरणों में लोटते थे, स्वयं इतने निरभिमान और सेवा-परायण थे कि कोई भी कुछ कहे, उसे बिना सङ्कोच स्वयं करते थे। श्री रामललाजी (लाल साहब) की सेवा प्रतिदिन बात ग्रस्त होने तक स्वयं ही करते थे। मुसाफरी में भी भगवत्पूजा-सेवा का पूरा ध्यान स्वयं ही रखते थे।

पूर्वावस्था में ज़ब आप छावनी में निवास करते थे तब मन्दिर के पार्षद माँजने की सेवा आपको मिली थी। धीरे-धीरे जब आपकी प्रतिष्ठा एक श्रेष्ठ कथाकार के एवं सच्चे संत के रूप में अतिशय बढ़ गई तब लोगों ने आपका कैङ्कर्य (पार्षद माँजना) छुड़ाने के लिये अनेकों भाँति से प्रयत्न किये, परन्तु आप अपनी सेवा में दृढ़ ही रहे।

स्थान बन जाने पर पूजा-रसोई में कोई त्रुटि आने पर स्वयं कमर कसकर खड़े हो जाते थे, और पुजारी-रसोइया की

अपेक्षा शुद्ध और सुन्दर रूप में अति शीघ्र रसोई-पूजा का काम सम्भाल देते थे। पंगत में परोसने का ढंग आपका इतना सुरुचिपूर्ण था कि ऐसा अब कहीं भी देखने में नहीं आता है। बार-बार पूछ-पूछ कर प्रसन्नतापूर्वक संतों को प्रसाद पवाते समय कभी-कभी हास्य में "पाते-पाते छुटै शरीर। तब मिलिहैं श्री सिया-रघुबीर" कहना हृदय को मुग्ध कर लेता था। स्थान में किसी को भी अपने काम से दिल घबरा जाता तो आप स्वयं उस काम को सम्भाल कर फिर वह काम दूसरों को दे देते थे। सर्वप्रियता आपका जन्मसिद्ध स्वभाव था। सम्प्रदाय में भजनभाव और विद्या-प्रचार के लिये भी आप सर्वदा प्रयत्नशील रहते थे। वैष्णव-धर्म के प्रचारार्थ आपने एक परीक्षा भी कायम की थी।

आप अपनी वृद्धावस्था में भी मन्दिर का काम स्वयं अपनी देख-रेख में कराते थे। प्रातः तीन बजे उठकर स्नान-पूजा, मन्त्र-जप, श्रीवाल्मीकि-पाठ आदि दस बजे तक करते थे। इस बीच में आरती के समय प्रसाद बाँटना और बगीचे से आये फूल-तुलसी सब संतों को पूजा के लिये अपने हाथों देने का आपको बड़ा प्रेम था। आरती के समय मन्दिर में स्वयं उपस्थित रहते एवं रामधुन तथा चावल-दाल अमनिया भी आप बड़े प्रेम से करते, वृद्धावस्था में चश्मा लगाकर जब आप चावल-दाल अमनिया करने लगते तब युवक साधुओं को अपनी अकर्मण्यता पर लज्जा लगने लगती थी।

—:०:—

शिष्य-समुदाय

गुरवो बहवः सन्ति शिष्य वित्तापहारकाः ।
तमेकं दुर्लभं मन्ये शिष्य संतापहारकम् ॥

—गुरु-गीता

इस संसार में शिष्य का धन हरण करनेवाले बहुत-से अवैष्णव गुरु मिलते हैं, किन्तु शिष्य के संताप को हरण करने वाला गुरु प्राप्त होना दुर्लभ होता है।

हमारे चरित्रनायक में यही सबसे बड़ी विशेषता थी कि वे शिष्यों के तीनों प्रकार के संतापों का नाश कर देते थे। यही कारण था कि नाना कामनाओं से तथा क्लेशों से पीड़ित प्राणी आते थे और सब मनोरथों को प्राप्त कर गुरुदेव की कृपा से प्रभु-प्राप्ति का यत्न करने लगते थे। श्री महाराजजी के लाखों शिष्य हुए। यदि उनके केवल नाम लिखे जायँ तो एक विशाल ग्रंथ अलग बन जाय। इसलिये उन सब के दुःख दूर होने का तथा उनपर क्या-क्या कृपाएँ आपने कीं—उन सब चरित्रों का वर्णन करना तो असम्भव ही है। हाँ, एक-दो भक्तों का चरित्र

भी पूर्ण न लिखकर केवल नाम-मात्र उनकी छटा का दिग्दर्शन कराना आवश्यक समझता हूँ।

श्री महाराजजी के विरक्त शिष्यों में सहस्रों बड़े-बड़े प्रतापी महात्मा अभी तक विद्यमान हैं, जिनके दर्शन, सत्संग से प्राणियों के भव-बंधन खुल जाते हैं। श्री रामपदार्थदासजी महाराज वेदान्ती, श्री अखिलेश्वरदासजी आदि श्री महाराजजी के परम-प्रिय शिष्य हैं। श्री "रूपकलाजी" भी महाराजजी को गुरु के समान मानते थे। हम यदि श्री महाराजजी के विरक्त शिष्यों में से केवल मुख्य-मुख्य महात्माओं के नाम लिखें तो लगभग एक हजार से भी अधिक हो जायेंगे। परम प्रसिद्ध श्री सीतारामीय मथुरादासजी महाराज भी हमारे चरित्रनायक के साधक-शिष्य हैं, जिनके श्री अवधकिकोरदासजी सरीखे प्रकाण्ड विद्वान् और साहित्य-संसार के जाज्वल्यमान रत्न शिष्य हैं।

द्वारकापुरी में श्री शङ्कराचार्यजी का जो प्रसिद्ध मठ है उसके पीठाधीश स्वामी श्री त्रिविक्रमतीर्थजी महाराज (जहाँ तक मुझे स्मरण है, उनका यही नाम था) अद्वितीय समर्थ विद्वान थे। स्थानीय प्रपञ्चों से अत्यन्त विरक्ति होने पर वे श्री अवध पधारे और श्री महाराजजी के पुण्य-दर्शन एवं सत्सङ्गलाभ से कृतार्थ हो गये। अद्वैत सम्प्रदाय के उद्भट विद्वान, आद्यशङ्कराचार्यजी के प्रसिद्ध पीठ पर प्रतिष्ठित आचार्य होकर भी श्री रामभक्ति-रस-भावित प्रेम-सुधा का

पान करने के लिये श्री महाराजजी के शिष्य हो गये। यहाँ 'स्नान-कुञ्ज' की ऊपरवाली कोठरी में निवास कर आपने श्री राम-मन्त्र का अनुष्ठान एवं श्री राम-मन्त्र संबंधी सुन्दर ग्रंथ रचे। 'श्री भुशुण्डी रामायण' के प्रकाशनार्थ भी आपने प्रयत्न किया था, परन्तु बीच में ही अचानक 'विद्याधिकारी विभाग' बड़ौदा के अत्याग्रह से आप गुजरात चले गये और वहीं आपकी परम-धाम यात्रा हो गई। आप वैष्णव होने पर तिलक-कंठी-तुलसीमाला आदि धारण करते थे, काषायवस्त्र तो हमारे सम्प्रदाय के अनुकूल ही है—ऐसी श्री महाराजजी की ही आज्ञा होने पर आप पहनते थे। आपने 'पुरुषार्थ-दर्शन' नाम का एक सूत्र-ग्रंथ भी रचा है, जो प्रकाशित है। इस प्रकार अन्य सम्प्रदायवाले भी आपके अनुगामी बनने में अपना सौभाग्य समझते थे।

गोंडा जिले में मुडेरवा ग्राम में महात्मा श्री राममिलन-दासजी रहते हैं। उन्होंने प्रथम १२ वर्ष गुफा में रहकर तप किया। सिर्फ साल में एक बार निकलते थे। जब बारह वर्ष तप करते हो गये तब उनको भगवत्-प्रेरणा हुई कि तुम अयोध्या जाकर जगद्गुरु श्री रामवल्लभाशरण जी की शरण ग्रहण करो। वे महात्मा शीघ्र ही आये और महाराजजी से उपदेश लेकर पुनः १२ वर्ष के लिये गुफा में भजन करने का नियम ले लिया। यह श्री राममिलनदासजी बड़े प्रसिद्ध महात्मा कहे जाते हैं।

इसी प्रकार सभी महात्माओं को महाराजजो के विषय में विलक्षण-विलक्षण अनुभव हुए हैं। उन सब का यत्किंचित् वर्णन हो सकेगा तो अगले संस्करण में करने का प्रयत्न करूँगा। इस समय पाठकगण इतने से ही संतोष करें। क्योंकि समयानुसार अत्यंत संक्षेप में ही बाध्य होकर लिखना पड़ा।

श्री महाराजजो के गृहस्थ शिष्यों में बड़े-बड़े विद्वान् राजे-महाराजे तथा सेठ-साहूकार और अफसर अद्यावधि विद्यमान है। परमभावना रसिक पं० श्री रामप्रसादजी महाराजजी के अनन्य भक्त थे। वे साकेत पधार गये। पं० रामकिशोर शुक्लजी, बी० ए०, एल० एल० बी० बहुत दिनों तक महाराजजी के स्थान में रहकर भजन करते थे। आपको दिव्य अनुभव निरन्तर होते रहते थे।

जयपुर के परम प्रसिद्ध श्री गंगासहायजी बहुरा 'प्रेम' महाराजजी के अनन्य भक्त थे। आपकी गुरु-भक्ति की तुलना इस कलिकाल में अन्यत्र होनी कठिन है। जयपुर में आपने श्री वैष्णवधर्म का खूब प्रचार किया। हमारे महाराजजी के जयपुर शहर में लगभग ५ हजार शिष्य हैं। उनमें प्रेम-प्रकाश कम्पनी के मालिक श्री बंशीधरजी जौहरी लड़ीवाले श्री महाराजजी के परम-प्रिय कृपा-पात्र थे। आपने तथा श्री बहुराजी ने जो-जो अपूर्व कार्य किये हैं, उनका वर्णन करने के लिये अलग ग्रंथ रचा जाय, तब उद्देश्य-पूर्ति हो सकती है।

सारे संसार के महात्माओं के दर्शन करने के पश्चात् अयोध्या में आकर श्रीमान् अमावाँ-टिकारी नरेश की धर्मशीला धर्मपत्नी राजराजेश्वरी श्रीमती रानी श्री भुवनेश्वरी कुँवरिजी ने हमारे श्री महाराजजी से दीक्षा ली तथा श्री मीराजी के सदृश विचित्र प्रेममयी भक्ति करके भगवद्दर्शनानन्द का अनुभव किया। श्री महाराजजी की कृपा से ही आपका राज्य दूना हो गया और पुत्र रत्नों की प्राप्ति हुई। श्री रानी साहिबा को ही श्री महाराजजी के अलौकिक अनुभव जितने हुए हैं, उनका एक स्वतंत्र ग्रंथ अलग लिखा जा सकता है। तन, मन, धन से आपने सपरिवार सर्वदा गुरुदेव की सेवा की। ऐसी अनुपम गुरु-भक्ति कलिकाल में अन्यत्र नहीं देखी जाती। आपने अयोध्या में अमावाँ-मन्दिर ऐसा विचित्र बनवाया है कि उस ढंग का विलक्षण मन्दिर मैंने किसी भी तीर्थ में नहीं देखा। उस मंदिर में देवताओं के भिन्न-भिन्न मंदिर बने हैं तथा श्री महाराजजी का मंदिर भी उसमें बना है। महाराजजी की बड़ी विशाल और मनोहर मूर्त्ति उसमें विराजमान है।

इसी प्रकार से श्री हथुआ नरेश भी सपरिवार हमारे महाराजजी के शिष्य हुए तथा उनको भी अलौकिक बातें देखने में आईं। उन्होंने गुरुदेव को साक्षात् भगवान् का रूप माना, बल्कि भगवान् से भी बढ़कर गुरुदेव को मानते हुए अब तक अपूर्व सेवा की।

-। काठियावाड़ बगसरा राज्याधिपति श्री राजकुमार श्री रघुवीरदासजी (अमरावाला) जो कि बड़े तेजस्वी राजा हैं अयोध्या में आकर श्री महाराजजी के दर्शन करते हो बिना मोल बिक गये। आपने जिस दिन से महाराजजी से दीक्षा ली, उसी दिन से आपके लिये बिलक्षण भगवद्दर्शनों का द्वार उन्मुक्त हो गया। आपने स्वयं लिखकर गुरुदेव की महिमा के लेख अखबारों में छपवाये हैं। अपने राज्य भर में आपने श्री हरि-भक्ति का प्रचार किया है। वहाँ वैष्णव-धर्म घर-घर में छा गया है। परिवार सहित आप गुरुदेव के शरणागत हुए थे। आपकी पुत्री श्री धनकुँवरि बा की निर्विघ्न-तया प्रसूती हो जाने के लिये श्री महाराजजी से प्रार्थना की गई। श्री महाराजजी ने अयोध्या से लिख भेजा—"राज-कुमारी निर्विघ्न प्रसूती हो जायगी तथा भक्त-पुत्र उत्पन्न होगा, कन्या नहीं होगी।" ऐसा ही हुआ भी। निर्विघ्नता से पुत्र हो गया। उस नवजात शिशु के ललाट पर ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक स्पष्ट देख पड़ता था। एक वर्ष तक तिलक साफ-साफ दीखता रहा, बाद में कुछ मलिन पड़ गया है। इस प्रकार से श्री महाराजजी के सैकड़ों चमत्कार आपने देखे हैं।

ऐसे ही श्री रायबहादुर डा० सरदार सिंह, डिप्टी कलक्टर तो महाराजजी के परम-प्रिय शिष्य हैं। आपने भी महाराज के आगे संकीर्त्तन में जो प्रेम दिखलाया है तथा जितने दिव्य सुखों का अनुभव किया है, वह लेखनी से बाहर की बात है।

इस प्रकार श्री हरिहर प्रसादजी, डिस्ट्रिक्ट जज भी श्री महाराजजी के उन कृपा-पात्रों में हैं, जो कि अन्तरंग रहस्यों का आस्वादन करनेवाले थे।

लखनऊ के पं० श्री गार्गीदत्तजी भी श्री महाराजजी के परम-प्रिय शिष्य हैं। लखनऊ में पं० गार्गीदत्तजी ने वैष्णव-धर्म का खूब प्रचार किया है। आपके सैकड़ों प्रेमी आपकी कृपा से भगवद्भक्ति प्राप्तकर कृतार्थ हो चुके हैं। आपने संत-सम्मेलन की भी स्थापना की है, जिसमें देश-देश के सिद्ध संत एकत्रित होते हैं। इस प्रकार श्री महाराजजी के लाखों शिष्य हैं। श्री महाराजजी बीसवीं सदी के सर्वश्रेष्ठ संत-शिरोमणि गिने जाते हैं। आपका अवतार ही भक्ति प्रचार के लिये हुआ था।

—:०:—

प्रेतोद्धार

एक सेठ के लड़के पर प्रेत आता था और नित्य प्रति घर वालों को इतना परेशान करता था कि सब व्याकुल हो उठते थे। अन्त में एक बार उससे पूछा गया—"तुम क्या चाहते हो ?" उसने उत्तर दिया—"तुम चाहे जितने उपचार करो, किन्तु मैं इस लड़के को नहीं छोड़ सकता। हाँ, यदि तुम अयोध्या में जानकीघाट पर श्री रामवल्लभाशरणजी के पास ले चलो, तो मेरा उद्धार हो जायगा।"

उस प्रेत की बात पर विश्वास करके सेठ का परिवार उस लड़के को लेकर अयोध्या में श्री महाराजजी के पास आया। पहले तो वह बालक अच्छा-भला बातें करता रहा, किन्तु ज्योंही श्री महाराजजी के सामने आकर बैठा त्योंही वह प्रेत उसपर चढ़ आया और श्री महाराजजी से उद्धार के लिये प्रार्थना करने लगा। महाराजजी ने कहा—"तुम्हारा उद्धार किस प्रकार हो सकता है ?" उसने कहा—"अपना चरणोदक यदि आप प्रदान करें तो अभी मेरी मुक्ति हो सकती है।"

दयालु-हृदय हमारे चरित्रनायक ने शीघ्र ही चरणामृत दे दिया। उसे पीते ही तत्काल वह लड़का मूर्छित हो गया

और थोड़ी देर में उठ बैठा। उस दिन के बाद आज तक फिर कभी प्रेत-बाधा नहीं हुई। सेठ परिवार सहित शरणागत हुआ और उसके देश के सभो लोग आ-आकर कृतार्थ होने लगे।

इसी प्रकार लखनऊ-निवासी एक विप्रवर जो बड़े योग्य व्यक्ति थे, उनके बड़े पुत्र पर एक प्रेत आने लगा। उस लड़के की शादी भी हो चुको थी। वह लड़का पहले एक बार अयोध्या आया था और श्री राममंत्र को दीक्षा ले चुका था, किन्तु भजन न करके दिन-रात व्यवहार ही में लगा रहता था। अपवित्र दशा में अवसर पाकर प्रेत उसे सताने लगा। वह प्रेत कोई मुसलमान था। वह मूत्रेन्द्रिय पर बैठ जाता और पेशाब होना बंद हो जाता। दवाओं से काम न चलता, तब हारकर सब परेशान हो जाते। एक दिन वह प्रेत उसी लड़के पर बैठकर बोलने लगा—"तुम लोग मेरे उद्धार का उपाय करो, नहीं तो इसी तरह सताता रहूँगा।"

उद्धार का उपाय पूछने पर उसने फिर कहा—'अयोध्या में जानकीघाट पर श्री रामकिशोरशुक्लजी के पास जाओ, वह अपने गुरुदेव से मेरे लिये कृपा करा दें, तो मेरा उद्धार हो जायगा। वे दोनों ही बड़े ऊँचे महात्मा हैं, उनका मेरे उद्धार के लिये केवल इच्छा करना ही काफी है। बस, जल्दी बोलो तुम लोग अयोध्या जाओगे या नहीं? इस लड़के ने बालपन में गुरु-मंत्र लिया था, उस मंत्र की दीक्षा के कारण इसका शरीर रक्षित है। उस दीक्षा के प्रभाव से इसके शरीर

में अब तक तेज भरा हैं। मेरा शरीर जला जा रहा है। मैं इसके द्वारा बोल रहा हूँ, पर मेरे तन में आग लग रही है। जल्दी बोलो ! जाओगे ?"

सबलोगों ने विचार कर कहा—"आप इस लड़के को अब न सतायें, हमलोग शीघ्र ही अयोध्या जायेंगे।

तदनन्तर वे लोग अयोध्या आये और कथा सुनाई। श्री रामकिशोरशरणशुक्लजी ने श्री महाराजजी के पास जाकर उन लोगों को सब व्यथा कह सुनाई। श्री महाराजजी ने आज्ञा की —'जाओ, भगवान् अच्छा ही करेंगे।"

श्री महाराजजी की कृपा से उसका उद्धार हो गया और वह लड़का आनन्द करने लगा। यों उसे भजन का प्रभाव मालूम हुआ और उसी दिन से मंत्रराज का जप नियम से करने लगा। इन पंक्तियों के लेखक ने भी उस लड़के को देखा था। उस समय उसकी आयु लगभग २५ साल की थी।

इसी प्रकार नित्य नये आश्चर्य-जनक कार्य होते ही रहते। एक ऐसी घटना चित्रकूट (करवी) स्थान के अधिकारी श्री रामगोपालदासजी ने आँखों देखी बतलाई थी।

सन् १९२७ में अखिल भारतीय वैष्णव सम्मेलन, अयोध्या में हुआ था। श्री रामगोपालदासजी सम्मेलन के मंत्री थे। श्री महाराजजी सम्मेलन के उपाध्यक्ष थे। हमारे महाराजजी के बहुत-से सेवक उस समय अयोध्या में आये हुए थे। उनमें से एक सेठ ने किसी ऐसे स्थल पर

पेसाब किया, जहाँ एक मुसलमान की कब्र थी। वह सेठ ज्योंही पेशाब करके लौटा त्योंहीं उसपर खबीस (प्रेत) चढ़ आया और उठा-उठाकर पटकने लगा।

सबलोग दौड़े हुए महाराजजी के पास आये और कष्ट-निवारण के लिये प्रार्थना करने लगे। महाराजजी के स्थान में श्री सियावल्लभदासजी रहते थे। श्री महाराजजी ने उनसे कहा—"आप जाइये और प्रेत उतार दीजिये।" वे बड़े उत्साह से गये और अपने सिद्ध तंत्र-मंत्रों का प्रयोग करने लगे। किन्तु उस प्रबल खबीस ने उनको भी उठाकर पटक दिया।

अब लोग और भी घबड़ा गये। फिर शीघ्रता से महाराजजी के पास आकर समाचार सुनाया। उस समय करवी के श्री रामगोपालदासजी भी महाराजजी के पास बैठे थे। उनको साथ लेकर श्री महाराजजी स्वयं पधारे। महाराजजी के आते ही उसने पटकना बंद कर दिया। श्री महाराजजी ने उससे पूछा—"तुम इसे क्यों तंग कर रहे हो।"

तब उसने कहा—"इस सेठ ने मेरा अपराध किया है, मेरी कब्र पर पेशाब कर दिया है, इसलिये मुझे दुःख हो रहा है। मैं इसको तंग करूँगा। आप कृपाकर मुझे दर्शन देने आये, यह बड़ी मेहरबानी की, किन्तु मुझे आपके तेज से बड़ा भय लग रहा है। आप मुझपर नाराज न होइयेगा।" महाराजजी ने पूछा—"क्यों बेचारे को तंग करते हैं? वह

अनजान में गलती कर बैठा, उसे आपका स्थान का पता नहीं चला। वह परदेशी आदमी है, आप माफ कर दें।"

खबीस ने फिर कहा—"अच्छा, आपकी आज्ञा से इसे माफ कर दूँगा, लेकिन सवा सेर दूध-जलेबी मँगवा दीजिये।"

श्री महाराजजी ने सवा सेर के बजाय ढाई सेर दूध-जलेबी मँगवा कर उसी समय वहाँ रखवा दी। उसने तत्काल उनको छोड़ दिया और वह सेठ तथा सियावल्लभदासजी सचेत हो उठ बैठे।

श्री रामगोपालदासजी पास ही बैठे थे। उन्होंने महाराजजी से पूछा—"प्रभो! आप किससे बात-चीत कर रहे हैं। यहाँ मुझे तो कोई दिखाई नहीं देता। महाराजजी ने कहा—"इस नीम पर वह इस समय बैठा हुआ है। मैं दिव्य-दृष्टि से देख रहा हूँ, तुम नहीं देख सकते।"

रामगोपालदासजी ने मुस्कुराते हुए कहा—"प्रभो! मैं उसे देख सकूँ, ऐसा उपाय बताइये।"

श्री महाराजजी ने कहा—"जब साधन में सिद्धि प्राप्त हो जायगी, तब दिव्य-दृष्टि मिल सकती है।

तत्पश्चात् महाराजजी ने सब को विश्वास कराने के लिये उस खबीस से कहा—"हमारे श्री रामगोपालदासजी के लिये नीम पर से दातून तोड़कर फेंक दीजिये।

ज्योंही ऐसा कहा ज्योंही उसने नीम से दो-तीन छोटी टहनियाँ तोड़कर श्री रामगोपालदासजी के आगे फेंक दीं। यह चमत्कार देखकर उसी समय श्री रामगोपालदासजी

चरणों में पड़ गये और स्थान पर आकर श्री महाराजजी को अपना सिद्ध गुरु बनाया। कुछ समय तक स्थान में रहकर उपदेश ग्रहण करते रहे।

एक बार श्री रामगोपालदासजी के दीक्षा-गुरु महंत श्री जयदेवदासजी महाराज ने कहा कि हमारा एक ग्राम 'दुबरिया' हमारी जमींदारी से निकला जा रहा है। मुकदमा चल रहा है। तुम अपने सिद्ध-गुरु के पास जाओ और ग्राम का मुकदमा हम जीतें ऐसा अनुष्ठान उनके द्वारा करवा दो। श्री रामगोपालजी हमारे चरित्र-नायक के पास आये और ग्राम बचाने के लिये प्रार्थना की। श्री महाराजजी ने ध्यान लगाया। ध्यान करके बोले—"तुम्हारे गुरुदेव पर प्राण-संकट भी आनेवाला है। अब बतलाओ, तुम्हारे ग्राम को बचायों या तुम्हारे गुरुदेव को ? दोनों में से एक चीज बच सकती है।" रामगोपालदासजी ने कहा—"ग्राम जाय तो जाय, गुरुदेव रहें।" कुछ अनुष्ठान करवाकर श्री महाराजजी ने कह दिया—"अब तुम्हारे गुरुदेव बच गये। पर ग्राम नहीं मिलेगा।" यही बात हुई। बहुत कोशिश करने पर भी ग्राम नहीं मिला। पीछे पता चला कि प्रतिपक्षी ने ऐसा प्रबंध किया था कि ज्योंही अब के दुबरिया ग्राम में महंथ श्री जयदेवदासजी आवें त्योंही बंदूक से उन्हें मार दिया जाय। यह पता चलने पर महंथजी को श्रीमहाराजजी पर अपार श्रद्धा हो गई।

—:o:—

अनेक रूप धारण-शक्ति

विहार प्रान्त में 'मुरार' ग्राम-निवासी श्री जगदम्ब सहाय जी बक्शी बड़े सरल सज्जन थे। वे अयोध्या में श्री महाराजजी के पास आकर शरणागत हुए और भजन करने लगे। गृह में जाकर पुनः माया-मोह में भूल गये। किन्तु श्री महाराजजी की कृपा से नित्य-नियम थोड़ा-बहुत चलता ही रहता। गुरु-भक्ति के प्रताप से अन्त समय में बीमार होने पर भी उन्हें शान्ति-सुख का अनुभव होता रहा।

श्री सीतारामीय बाबू ब्रजेन्द्र प्रसाद, रिटायर्ड सब जज के बक्शीजी फुफेरे भ्राता थे। सीतारामीयजी को अयोध्या में खबर मिली कि बक्शीजी के पैर में जख्म हो गया है, बहुत दुःखी हैं। सीतारामीयजी ने श्री महाराजजी के पास आकर बक्शीजी की दशा सुना दी। श्री महाराजजी ने कहा—"बक्शीजी का शरीर अब नहीं रहेगा। किन्तु तुम उनके परिवार वालों को सान्त्वना देने के लिये यही कहना कि अच्छे हो जायँगे।"

तदनन्तर १४ जून सन् १९४० को तार मिला कि हालत खराब है। तार पाते ही सीतारामीयजी चल दिये। उन्होंने जाकर देखा तो हालत बहुत बिगड़ी हुई थी, किन्तु बक्शीजी के होश-हवास सब ठीक थे। आनन्द से बोलते तथा गुरुदेव का स्मरण और रामनाम जपते रहते थे। उनको दिव्य-दर्शन भी होने लगे थे। मंगलवार १८ जून, सन् '४० को रात

में कुर्सी पर बैठी उनकी स्त्री पंखा झल रही थी। उसी समय अकस्मात् हमारे श्री महाराजजी प्रकट हो गये। अच्छी प्रकार बक्शीजी को देखा तथा उनकी स्त्री के मस्तक पर हाथ रखकर अन्तर्द्धान हो गये। श्री बक्शीजी तथा उनकी स्त्री दोनों ने ही श्री महाराजजी को देखा और चरणों में पड़े, किन्तु कोई बात नहीं कर सके। इसके बाद बक्शीजी गुरुदेव का स्मरण कर राम-नाम जपते हुए साकेत सिधार गये।

इस प्रकार के महाराजजी के अनेकों चरित्र प्रत्यक्ष देखे गये हैं। उन सब का विवरण अगले संस्करणों में देने की चेष्टा की जायगी।

एक बार आपने मिथिला धाम की यात्रा की थी तथा वहाँ परिक्रमा की थी। उस समय उस प्रान्त के सभी प्रतिष्ठित संत-महन्तों ने साथ दिया था। उसमें ऐसा आनन्द हुआ कि उत्तरोत्तर आनन्द की वृद्धि होती ही गई। उस परिक्रमा के द्वारा संकीर्त्तन और भगवद्धर्म का अपार प्रचार होता है। उस परिक्रमा से लौटने पर श्री जीवनबाला नाम की एक विदुषी ने आपसे दीक्षा ली। जीवनबालाजी बँगला की प्रकाण्ड विद्वान् हैं। आपने श्री रामायण का, श्रीमहाराजजी की आज्ञा से ३००० पृष्ठों में अनुवाद किया है तथा और भी ग्रंथ लिखे हैं, जो प्रकाशित हो चुके हैं। श्री जीवनबालाजी ने एक बार देखा कि बहुत-सी चुड़ैलें आकर उनपर थूकने लगीं और डराने लगीं। उसी समय श्री महाराजजी ने प्रकट होकर उन सब डाकिनियों को भगा दिया और अनन्य गुरुभक्त को विलक्षण आशीर्वाद देकर अन्तर्द्धान हो गये।

—:o:—

विश्वव्यापी भक्ति-प्रचार

हमारे चरित्रनायक के अवतार का मुख्य हेतु भक्ति-प्रचार था। आपने श्री अयोध्या में सम्पूर्ण संतों को भगवच्चरितामृत पिलाकर भक्ति-सुधा-मद से उन्मत्त बना दिया। तदनन्तर देश-भर में प्रचार करने के लिये अयोध्या से बाहर, भारत के प्रत्येक नगर में अपने विरक्त सहस्रों शिष्यों को योग्य बनाकर भेजना प्रारम्भ किया। तदनन्तर अखिल-भारतीय श्री रूपकला-हरिनाम-यश-संकीर्त्तन-सम्मेलन के सभापति के पद पर सन् १९१४ में आप आसीन हुए। प्रतिवर्ष जहाँ सम्मेलन होता, आप सहर्ष जाते और जिस नगर में जाते, वहाँ के सहस्रों नर-नारी आपके भाषण के प्रभाव से प्रभावित होकर शिष्य हो जाते। बड़े-बड़े नास्तिक को आपने आस्तिक बना दिया, बड़े-बड़े मूर्खों को आपने पण्डित बना दिया, जिसके भाग्य में दरिद्रता लिखी थी उसे भी आपने ऐश्वर्यशाली बना दिया।

आपकी कृपा से बिगड़ी बनते देखकर सहस्रों नर-नारी प्रत्येक नगर में शिष्य होते। उस सम्मेलन के आप स्थायी सभापति होकर आजीवन सभी सम्मेलनों में जाते रहे और भाषणों से कृतार्थ करते रहे। आपकी आवाज बड़ी दूर तक जाती थी। वाणी में अत्यंत मधुरता और सरलता थी।

इसके अतिरिक्त १४ वर्षों तक आप तुलसी-सत्संग-मण्डल के सभापति रहकर प्रचार कराते रहे तथा 'श्री वैष्णव-

सम्मेलन साधु-महामण्डल' की आपने अपार उन्नति की। इन सब कार्यों में आपको बड़ा उत्साह था। तन-मन-धन से आप बराबर सहायता करते रहते थे। "श्री रामानन्दीय श्री वैष्णव-महामण्डल" का आपने जो उत्थान किया था, वह प्रत्येक प्रचारक को विदित ही है। आप आजकल की रीति के अनुसार सुन्दर भाषण करते थे। आप में प्राचीनता और नवीनता का अपूर्व सम्मिश्रण था।

आप प्रायः संकीर्त्तन का ही प्रचार करते थे। आपके उद्योग से इस बीसवीं शताब्दी में सहस्रों विशाल सम्मेलन हुए तथा बड़े-बड़े नगरों में संकीर्त्तन की धूम मच गई। श्री रूपकलाजी महाराज तथा श्री रामाजी महाराज की सहायता से आपने संकीर्त्तन रूपी समुद्र की धारा प्रबल वेग से बहाई थी। अखण्ड संकीर्त्तन के वार्षिक, मासिक, पाक्षिक, नवाह्निक अनुष्ठान की आपने ही सुन्दर विधि बनाई थी। श्री रामचरितमानस के नवाह तथा एकाह का आपने खूब प्रचार किया। श्री वाल्मिकीय रामायण के नवाह की भी आपने प्रेरणा कर पंडितों का उत्साह बढ़ाया था। इस प्रकार आपका निरन्तर भक्ति-प्रचार-कार्य चलता रहता था। जिस प्रकार श्री शंकराचार्य ने तथा श्री रामानुजाचार्य ने देशव्यापी प्रचार किया था उसी प्रकार आपने सर्वत्र भक्ति का डंका बजाकर एक धार्मिक क्रान्ति मचा दी।

—:०:—

साहित्य-सेवा

हमारे चरित्रनायक को साहित्य-सेवा का एक विचित्र व्यसन था। आपका साहित्य-सेवा-क्षेत्र बहुत विस्तृत है। वह तो समय पाकर ही प्रकाश में आयेगा, किन्तु यहाँ संकेत कर देना कर्त्तव्य समझता हूँ। आपने साहित्य-प्रचार के लिये ही विद्यार्थियों को स्वयं विद्या पढ़ाकर विद्वान् बनाया। क्वीन्स कालेज की संस्कृत परीक्षा देनेवाले छात्रों को भी आप पढ़ाते थे। सम्पादकों तथा लेखकों का आपके पास ताँता लगा रहता था। कल्याण के सुप्रसिद्ध सम्पादक श्री हनुमान प्रसाद पोद्दारजी ने भी एक बार कहा था—"श्री महाराजजी कोई विलक्षण महापुरुष हैं।" आपके लेख कल्याण में तथा अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते थे।

आपने स्वयं भी श्लोकों की रचनाएँ की हैं तथा अनेकों ग्रन्थों की टीकाएँ की हैं। उनमें से कुछ प्रकाशित ग्रन्थों के नाम यहाँ लिखे जाते हैं—

(१) श्री "कोशल-खण्ड" की टीका
(२) श्री रामस्तवराज श्री हरिदास कृत भाष्य की टीका
(३) श्री शिव-संहिता ,,
(४) श्री सख्य-रस-चन्द्रोदय ,,
(५) श्री सुन्दर-मणि-सन्दर्भ ,,
(६) श्री जानकीस्तवराज ,,
(७) श्री रामतापिनी उपनिषद् श्री हरिदासजी कृत भाष्य की टीका
(८) श्री राम नव रत्न

(९) श्री शिक्षा पत्री
(१०) श्री सुदामा बारह खड़ी
(११) ध्यान मंजरी
(१२) रहस्यत्रय
(१३) तत्त्वत्रय
(१४) श्री रामपटल की टीका
(१५) विनय कुसुमाञ्जलि-टीका

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त आपके हस्तलिखित अनेकों ग्रन्थ अप्रकाशित हैं। इनके अतिरिक्त अनेकों छोटे-छोटे ट्रैक्ट तथा अखबारों का प्रकाशन आपने कराया था। आपने अपने शिष्यों के द्वारा सैकड़ों ग्रन्थों के प्रणयन और प्रकाशन कराने की भरपुर चेष्टा की थी। श्री 'संत' का प्रकाशन तथा जयपुर के 'श्री रामायण' संस्करण का संशोधन आपने उत्साहपूर्वक करवाया था। श्री गलता गद्दी के पुन: प्राप्त होने के लिये आपने ही अपने प्रिय शिष्य श्री वंशीधरजी को लिखकर आन्दोलन का श्रीगणेश कराया था। जो सफलता प्राप्त हुई वह प्रत्यक्ष है। एक पंडित ने वैष्णव-धर्म के खण्डन में एक पुस्तक लिखी थी, उसपर महाराजजी ने दावा कर दिया। अदालत में जा, उसे शास्त्रार्थ में हरा और वहीं उससे माफी मंगवाकर उसकी पुस्तकें जलवा दीं। इस प्रकार आपने सैकड़ों विद्वानों से शास्त्रार्थ करके विजय प्राप्त की थी। साहित्य-सेवा के लिये आप सभी विद्वान् वैष्णवों को उत्साहित करते रहते थे, एवं सब प्रकार की सहायता करते रहते थे।

—:०:—

अन्तर्द्धान-लीला

आप अनन्त थे। आपकी अनन्त लीलाएँ कहाँ तक कही जायें। विश्व-कल्याण के लिये ही भगवान ने आपको अपना प्रतिरूप बना कर भेजा था। श्री हनुमानजी पद-पद पर आपके सब कार्य करते थे।

श्री हनुमान-बाग में मंदिर बनवाकर आपने सिद्ध हनुमानजी की स्थापना की। वह सिद्ध हनुमान वास्तव में सिद्ध ही हैं। उनकी मनोहारिणी दिव्य मूर्त्ति सौम्य-मुद्रा से विराजमान है। ऐसी मूर्त्ति दूसरा कोई कारीगर फिर बना ही नहीं सका। देखते-देखते मन प्रफुल्लित होकर प्रेम-रस में डूब जाता है।

इन सिद्ध हनुमानजी के चमत्कारों के अनेक चरित्र विख्यात हैं। एक बार श्री सरयूजी खूब बढ़ आईं। वह मंदिर श्री सरयू-तट पर बना है। चारों ओर छोटा-सा बाग है। सरयूजी के बढ़ने पर सब को चिन्ता हुई कि जल जरा सा और बढ़ गया तो बस, मंदिर और बाग का पता न लगेगा। श्रीमहाराजजी से समाचार कहा गया। श्रीमहाराजजी ने उत्तर दिया—"सिद्ध हनुमानजी स्वयं ही सब ठीक कर लेंगे।"

ऐसा ही हुआ भी। श्री सरयूजी का जल बढ़ा खूब, और बाग की पतली जीर्ण चहारदीवारी पर जोरों की धारा टक्करें मारती रहीं। किन्तु, चहारदीवारी को गिरा नहीं सकी और जल बाग को नुकसान नहीं पहुँचा सका।

श्री सरयूजी की इस बार की बाढ़ को देख महाराजजी को चिन्ता हुई कि हमारे श्री हनुमानजी का बाग खतरे में है। नीची भूमि में बनवाकर पहले गलती की गई इसलिये अब खूब ऊँचे पर बनवा दें और उस मदिर में श्रीहनुमानजी को पधारकर सदा के लिये विघ्न दूर कर दें। ऐसा विचारकर श्रीहनुमान-वाटिका की नींव डाली गई। दूर-दूर के कारीगरों को बुलाकर पत्थर का विशाल मंदिर बनवाना प्रारम्भ कर दिया। श्रीहनुमान-गढ़ी के सदृश ऊँचे पर ऐसी चतुरता से मंदिर बनवाया गया कि सरयूजी का प्रवाह वहाँ कभी कोई हानि पहुँचा ही न सके। जब महाराजजी अत्यंत वृद्ध हो गये थे तब मन्दिर बन रहा था। उनकी क्षींणता के कारण चलना-फिरना एकदम बन्द हो गया था। इसलिये सेवक आपको रिक्शे पर बैठा कर वाटिका में ले जाया करते थे।

जब मंदिर बन चुका तब श्री हनुमानजी को वहाँ प्रतिष्ठित करने के लिये तैयारी की गई। कुछ संत कहने लगे— "प्रतिष्ठित विग्रह का स्थान-परिवर्त्तन करना उचित है या नहीं ?"

श्री महाराजजी ने इसका निर्णय श्री हनुमानजी पर ही रख दिया। दो चिट्ठियाँ रक्खी गई। एक में 'उचित' और दूसरी में 'अनुचित' शब्द लिखाये गये थे। जब चिट्ठी निकाली गई तो उसमें 'अनुचित' शब्द वाली चिट्ठी निकाली।

श्री महाराजजी ने जयपुर के कारीगर को आज्ञा देकर वैसी ही दूसरी मूर्त्ति बनवाई। सिद्ध हनुमानजी वहीं अपने पुराने सरयू-तटवाले बाग में ही रहे। जो नई मूर्त्ति वनकर आई, उसकी प्रतिष्ठा हनुमान बाटिका में की गई। प्राण-प्रतिष्ठा के समय श्री वेदान्तीजी ने स्वयं श्री हनुमानजी के विग्रह के हृदय पर हाथ रखकर देखा, कुछ धक्-धक् शब्द का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। औरों को भी दिखाया गया, उन्होंने भो स्वासोच्छ्वास का अनुभव किया।

श्री महाराजजी ने भगवत्-प्रेरणा से श्री वेदान्तीजी की नाना प्रकार की परीक्षाएँ ली थीं। श्री वेदान्तीजी प्रत्येक परीक्षा में उत्तीर्ण होते गये। वेदान्तीजो शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान् हो गये तथा योग-विद्या में भी अपूर्व योग्यता प्राप्त कर ली। श्री वेदान्तीजी कथा कहने की कला में भी श्री महाराजजी के सदृश माधुर्य्य वरसा देते थे।

जब हमारे चरित्रनायक अत्यंत वृद्ध हो गये और शिथिलता आ गई तथा ज्वर से आक्रान्त होकर शरीर असक्त हो गया तब श्री वेदान्तीजी के पास आपने पत्र भेजा। वह पत्र आपने श्लोकों में लिखा है। उस पत्र को देखकर पाठक

श्रीमहाराजजी की बोलचाल का अनुभव कर सकेंगे। वह पत्र अब भी है। शीशे में मढ़ा कर स्थान में रक्खा गया है। उस पत्र की नकल नीचे दी जाती है—श्रीमहाराजजी ने अपनी कलम से इसे लिखा है—

श्रीरामो विजयतेतराम

स्वस्ति श्रीमदनन्तशक्तिरखिलैर्ब्रह्मादिभिर्वन्दितो।
रामस्त्वामभिरक्षताद्भुवि सदा भक्तानुकम्पो प्रभुः॥
वैराग्यं चाविद्यकार्य विषये प्रत्यक् प्रबोधे रुचिं।
दद्याद्दाशरथिः स्वपादविषये भक्ति दृढां निर्मलाम्॥१॥
नतिर्मदीया विबुधेषु तेषु बेदान्ततीर्थेषु महत्सु सत्सु।
त्वयाभिधेया कुशल च तेषां देवं दले नैव सदापि मह्यम्॥२॥
ज्वराक्रमः श्रावणमासतो मे भवच्छरीरेति विषण्णतार्थकः।
तेनाति शैथिल्यमवाप्यकृत्स्नशः कार्येष्वसक्तोहमतीव निर्बलः
॥३॥

शरीरमेतत् खलु क्लेश भाजनं ह्यात्मा सदानन्दमयो निरामयः।
इति प्रबोधेन मनस्त्वहर्निशं प्रसन्नतामेति न क्वापि खिन्नता॥४॥
तारेति पत्रं यदि प्राप्नुयादितस्तदैव सर्वं प्रविहाय कार्यं।
तूर्णं त्वयात्रागमनं विधेयं योज्यं मनः पाठ विधौतथान्यथा॥५॥
सर्वे कुशलिनश्चाद्य विनिवृत्ताज्वरातितः वैष्णवा स्थानगा।
रामकृष्णदासादयः परे प्रतिष्ठापद्धतिः प्रेष्या निवृत्त-
तत्प्रयोजनम्॥६॥

शमत्र॥

तदनन्तर श्री वेदान्तीजी विद्याध्ययन कर प्रकाण्ड-विद्वान् होकर अयोध्या आये, तब श्रीमहाराजजी ने तत्काल बनवाये हुए नवीन विशाल-भवन में संस्कृत-पाठशाला स्थापित कर दी।

उसका संचालन श्री वेदान्तीजी के अधीन कर दिया। श्री महाराजजी ने वेदान्तीजी को अपने कथा-मंडप में कथा कहने की आज्ञा दी। श्री वेदान्तीजी ने ऐसी मनोहर कथा संतों को श्रवण कराई कि सभी संत चकित हो गये। नित्य-प्रति वेदान्तीजी की कथा में वैसी ही भीड़ होने लगी जैसी महाराजजी की कथा में होती थी।

क्रमशः महाराजजी का शरीर निर्बल हो चला। चलने फिरने की शक्ति नहीं रही। पटने के बा० बलदेव प्रसादजी ने एक दिन स्वप्न में अनुभव किया कि श्री महाराजजी का शरीर आगामी कार्तिक शु० २ को नहीं रहेगा। संवत् १९९५ के फाल्गुन में यह स्वप्न देखा गया। इस स्वप्न को देखकर गुरु-वियोग की आशंका से विकल हो, वे अयोध्या आये और अपने स्वप्न का वृत्तान्त निवेदन किया। उस समय महाराजजी के निकट श्रीमान् राजाबहादुर अमावाँ-टिकारी नरेश भी उपस्थित थे। उनके द्वारा भक्तिमूर्त्ति श्री रानीसाहिबा को भी समाचार मिल गया। तत्काल ही यह समाचार सब प्रेमियों में बिजली की तरह फैल गया।

प्रेमि शिष्य-वृन्द आ-आकर गुरुदेव से प्रार्थना करने लगे—
"प्रभो! आपके वियोग का दुःख हमलोग नहीं सहन कर सकेंगे। हमसब के प्राण तो केवल आपका मुख-चन्द्र देख-देख कर ही रहते हैं। इसलिये बाबू साहब का स्वप्न झूठा हो जाय, यही वरदान दीजिये।"

इसके लिये राजाओं की ओर से अनुष्ठान प्रारम्भ हो गये तथा प्रेमी शिष्यगण भी अपनी ओर से महाराजजी के लिये अनुष्ठान पूजा पाठ करने लगे। श्री राजकुमार

श्री रघुवीरदासजी वगसरा राज्य ने भी अपने राज्य में अनुष्ठान करवाया। धीरे-धीरे कार्तिक मास आ पहुँचा। सब शिष्यगणों के दिल धड़कने लगे। लोग बाहर से आने लगे। सब यही प्रार्थना करते कि महाराजजी अभी और ठहरें।

कार्तिक शु० १ की रात्रि में श्री रामधुनिया बाबा को स्वप्न हुआ। यह रामधुनियाँ बाबा अयोध्या के पहुँचे हुए महात्माओं में गिने जाते थे। यह श्री महाराजजी के पुराने शिष्य थे तथा बड़े तपस्वी थे। श्री रामधुनियाँ बाबा को भी अपने गुरुदेव की चिन्ता व्याकुल कर रही थी। रात्रि में स्वप्न में उन्होंने देखा—"एक विमान आया है। उस विमान के चारों ओर स्वेत हाथी हैं। विमान में सुरगणों से सेवित एक अनुपम शान्तियुक्त महापुरुष बैठे हैं। वे महापुरुष गुरुदेव के सम्मुख आकर कुछ वार्तालाप करने लगे। उन्होंने ऐसी बातचीत की, जिससे पता लगा कि अभी महाराजजी और रहेंगे। श्री महाराजजी से विदा होकर वह महापुरुष विमान पर बैठ चले गये। श्री महाराजजी फिर अपने आसन पर विराज गये।"

यह स्वप्न देख श्री रामधुनियाँ बाबा प्रातःकाल दौड़े आये और सब प्रेमियों को यह स्वप्न सुनाकर कहने लगे—"महाराजजी अभी और रहेंगे। कोई घबराये नहीं।" यह स्वप्न सुन कर सब ऐसे आनन्दित हो उठे, जैसे चातक को स्वाति-विन्दु मिल गया हो। पश्चात् जब श्री महाराजजी के पास सब प्रेमी आये तब आपने भी यही कहा—"आपलोग घबरायें नहीं, हम अभी और रहेंगे।"

सब शान्त हो गये। तिथि निकल गई। प्रफुल्लित चित्त से सब प्रेमी लौट गये। पश्चात् श्री महाराजजी कुछ अस्वस्थ रहने

लगे। उस समय श्री महाराजजी की सेवा में श्री अखिलेश्वर-दासजी रहते थे। श्री सियाराघवदासजी, श्री वेदान्तीजी के प्रिय शिष्य श्री रामचन्द्रदासजी तथा श्री प्यारेलालजी और श्रीरामचरित्र बाबू आदि प्रेमियों ने गुरुदेव की अत्यंत सेवा की है।

संवत् १९९८ कातिक शुक्ल १० को अयोध्या में लाखों प्रेमी पधारे हुए थे, क्योंकि उसके एक दिन पहले अक्षय नौमी की परिक्रमा थी। आज महाराजजी को अयोध्या में आये ठीक ६० वर्ष हो चुके थे। दशमी की रात्रि में करीब १० बजे आपको विशेष शिथिलता देखी गई। आपने ध्यान के लिये नेत्र बन्द कर लिये। उस समय आपको ऊपर के निवास-स्थान से लाकर नीचे चौक में बिठाया गया। आप पद्मासन से बैठे और नेत्र बंद किये हुए थे। वेदान्तीजी ने कनक-भवन से लाया हुआ चरणामृत पिलाया। उस समय आपने नेत्र बंद किये हुए ही सब को सीताराम-सीताराम कहने की आज्ञा दी। सब लोग सीताराम-नाम-कीर्तन करने लगे। उसी समय आपने पूरक प्राणायाम की तरह सांस ऊपर को खींच ली। सांस खींचते ही आपके सिर के केस एकदम सीधे खड़े हो गये और आप बिलकुल शान्त और प्रसन्न मुख दिखाई पड़े। उसी समय डाक्टर ने नाड़ी देखी और महाप्रस्थान घोषित कर दिया। चारों ओर खड़े हुए सहस्रों शिष्यगण बिलख-बिलख कर रोने लगे। वे सब क्रन्दन के साथ श्री सीताराम-नाम-कीर्तन रात्रिभर उसी जगह बैठे हुए करते रहे। प्रातःकाल लाखों भक्तों के साथ हाथी-घोड़े, गाजे-बाजे सहित विमान निकाला गया। राजा-प्रजा सब उसमें सम्मिलित थे। नाम-ध्वनि और वेद-पाठ सहित अयोध्या की अन्तर्गृह परिक्रमा करते

हुए श्री सरयू-तट पर आकर जल में प्रवेश किया। जब प्रवेश किया तब तो जल कटि-पर्यन्त था, किन्तु जब जलप्रवाहकर लौटे तब जल इतना हो गया कि लोगों को तैरकर आना पड़ा। इस आश्चर्य का अनुभव उस समय सबने किया।

आपके उत्तराधिकारी श्रीवेदान्तीजी महाराज ने अपार भक्ति-भाव पूर्वक उत्तर-कर्म करके बारहवें दिन ब्राह्मण भोजन कराया। तेरहवें दिन हजारों रुपये लगाकर अपूर्व भण्डारा किया गया। ऐसा भण्डारा कहीं देखने में नहीं आया था।

उधर श्री राजेन्द्र प्रसाद, डिप्टी साहब ने स्वप्न में देखा—"साकेत धाम में जब महाराजजी पधारे हैं, तब वहाँ पर मणिमय मंदिरों में पधारकर उनका अपार स्वागत हो रहा है। वहाँ पर उनके आश्रित शिष्यों के लिये भी बहुत से मणिमय महल बात-की-बात में बन गये हैं।"

हमारे चरित्रनायक कोई महापुरुष थे या साक्षात् भगवान् ही थे। क्या कहें! ऐसे गुण तो भगवान में भी नहीं मिलते, क्योंकि भगवान् भी दुष्टों पर दिखावे में क्रुद्ध हो जाते हैं, किन्तु आप तो अपराध करनेवाले दुष्टों पर दिखावे में भी कभी क्रुद्ध नहीं हुए।

आपका ऐश्वर्य अपार था। आपके सैकड़ों बड़े-बड़े विचित्र चरित्र बाकी रह गये हैं, उनका लिखना अत्यंत आवश्यक था, किन्तु समय की प्रेरणा से आधे चरित्र भी नहीं लिख सके और पुस्तक का कलेवर बहुत बढ़ गया। अगले संस्करण में शेष चरित्रों का समावेश किया जा सकेगा।

बोलो, गुरुदेव भगवान् की जय।

—:०:—

उपदेश

श्री महाराजजी के साकेतवास होने के पश्चात् कई ऐसी घटनाएँ हुई हैं। इन घटनाओं से हमें विश्वास हो गया है कि श्री महाराजजी संकट पड़ने पर भक्तों का कष्ट दूर करने को अब भी दिव्य रूप से प्रकट हो जाते हैं। इसलिये, उनका अब सदा के लिये वियोग हो गया, ऐसा नहीं मानना चाहिये। वे अपने सभी प्रेमी-भक्तों के पास अलक्षित रूप से विराजमान रहते हैं। जिस भक्त को उनके दर्शनों की प्रबल उत्कण्ठा होती है उसके पास प्रकट होकर उसे दर्शन देते हैं, ऐसा प्रत्यक्ष देखा गया है।

श्री महाराजजी की गद्दी पर श्री वेदान्तीजी विराजमान हुए। आपके रूप-रंग-ढंग सब महाराजजी के ही समान हैं। इसीलिये बहुत-से भक्तों को अयोध्या में आज भी वही सत्संग सुख प्राप्त हो रहा है। श्री वेदान्तीजी ने श्री महाराजजी का निवास-स्थान वाला मंदिर लगभग १ लाख रुपया लगाकर फिर से बनवाया है। श्री अखिलेश्वरदासजी ने भी मणिरामजी की छावनी में श्री महाराजजी की गद्दी पर कथा

कहने का भार लिया है। आपकी कथा में प्रासादिक गुण है। संतजन आपकी कथा श्रवण कर मोहित हो उठे हैं। अपूर्व विद्वता के सहित सरस प्रेम-रस से सींची हुई कथा आप सुनाते हैं।

श्री महाराजजी के कुछ अनमोल बोल यहाँ पर संकलित किये जाते हैं, क्योंकि अब प्रेमीजनों को अवलम्ब ये ही वचन हैं। ये वचन सर्वदा मार्ग बतलाते रहेंगे और शान्ति प्रदान करते रहेंगे।

(१) श्री तुलसीकृत रामायण प्रत्यक्ष फलदायक आशीर्वादात्मक ग्रंथ है। मैं बार-बार यह कहते नहीं अघाता कि जो कुछ मुझे प्राप्त है, वह मानस की कृपा से प्राप्त है। मानस का आधार दृढ़ता स लेना चाहिये।

(२) भगवदर्शन के लिये इन बातों को अवश्य करना पड़ता है। मंत्र-जप, गुरु-सेवा, संत-सेवा, उत्साह और धैर्य। मंत्रानुष्ठान से दर्शन हो सकते हैं, किन्तु गुरुदेव की पूर्ण कृपा होनी चाहिये। संतों का भूलकर भी अपराध न करे, प्रबल उत्साह के बिना कोई अनुष्ठान सफल नहीं होता। अन्नदोष और सङ्गदोष से बचना चाहिये।

(३) इस संसार में सदा रहना नहीं है। इसलिये किसी से मोह नहीं करना चाहिये और किसीसे द्वेष भी नहीं करना चाहिये।

(४) प्रत्येक प्राणी को अर्थ-पंचक ज्ञान गुरुदेव से अवश्य सीखना चाहिये और सदा अपना तथा परमात्मा का स्वरूप चिन्तन करते रहना चाहिये। अर्थ-पंचक-ज्ञान होने से जीवात्मा का कायापलट हो जाता है।

(५) भगवान् की सेवा ही जीव का धर्म है। श्री हनुमानजी तथा श्री लक्ष्मणजी भी इसी बात की चरित्रों-द्वारा शिक्षा देते हैं। लक्ष्मी और शेषजी भी यही आदर्श दिखला रहे हैं। मानसी-सेवा सब सेवाओं से उत्तम है, किन्तु बिना शरीर से सेवा किये हुए मानसी-सेवा सिद्ध नहीं होती।

(६) सब साधनों से श्री राम-नाम-जप सर्व-श्रेष्ठ साधन है। चलते-फिरते, उठते-बैठते श्री सीताराम-नाम-जप करते रहना चाहिये। चौबीसों घंटे नाम-जप होनेपर जब काल आयेगा तब सदा के अभ्यास से अंत समय में भी नाम स्मरण हो जायगा।

(७) नित्य-प्रति ध्यान अवश्य करना चाहिये। दो-चार घंटे ध्यान करने से अन्तःकरण-रूपी दर्पण साफ हो जाता है, तब भगवद्दर्शन के सुख का अनुभव होता है। दिव्य प्रकाश झलकने लगता है।

(८) सत्य भाषण और ब्रह्मचर्य ही ऊँचे उठने का मूल मन्त्र है। इन दोनों के बिना प्राणी पशुओं से भी नीचे गिर जाता है।

(९) अहिंसा ही परम धर्म है, किन्तु आततायियों को स्वधर्म रक्षा के लिये संग्राम में वध करना भी अहिंसा ही है।

(१०) गीता के बतलाये हुए साधनों को दृढ़ता से करना चाहिये। दिव्य-दृष्टि प्राप्त करने के लिये पद्मासन मे बैठकर नेत्र बन्द करके दोनों भृकुटी के मध्य में ध्यान करना चाहिये। भगवान् के चरणों के नखों से निकलती हुई ज्योति को ध्यान करे तथा श्री सीताराम-नाम का भी अखण्ड जप अन्तर में होता रहे। इस प्रकार ध्यान से ही भृकुटी के मध्य में प्रकाश दिखाई देने लगता है, वही प्रकाश बढ़ते-बढ़ते चन्द्रमा के सदृश गोल होकर स्थिर हो जाता है। शान्त-एकान्त स्थल में यह अभ्यास करना चाहिये। इस दिव्य-दृष्टि के खुल जाने पर सब स्थानों की घटनाएँ देखी जा सकती हैं, भविष्य का ज्ञान भी हो जाता है और देव-दर्शन प्राप्त होते हैं।

(११) भगवान् में अनन्य-भक्ति होने पर ही साधना आगे बढ़ती है। शरणागति का मर्म पूर्ण आत्म-समर्पण है। बिना प्रभु-प्रेम के सब साधन उसर भूमि में वर्षा के समान व्यर्थ हो जाते हैं। निष्काम-भावना अत्यंत दृढ़ होनी चाहिये।

(१२) 'श्री रामरक्षा-स्तोत्र' के ३ पाठ नित्य करने से सब विघ्न नाश होते रहते हैं।

★

द्वितीय भाग

श्रीयुगलसरकार के प्रत्यक्ष दर्शन

एक बार फाल्गुन मास में श्रीमहाराजजी कनक भवन में फाग-उत्सव देखने गए। प्रेमियों के हृदय में महान् आनन्द भरा था। श्रीगुरुदेव के नेत्रों में श्री कनक भवन विहारिणी विहारीजू की बाँकी फाग झाँकी बसी हुई थी। श्रीयुगल सरकार की अपूर्व छटा देखकर उनके सम्पूर्ण शरीर में रोमांच उठ आए और हृदय-गगन में सुप्रीति की घटा छा गई। इस प्रकार भगवान् के दर्शन के आनन्द में मग्न होकर वे लौटने का विचार करने लगे।

इसी बीच दर्शकों में से एक नई अवस्था के साधु श्रीगुरुदेव के पास आए। बिना जाने-पहचाने ही वे श्रीमहाराजजी को अत्यन्त प्रिय लगने लगे। वे उन पर मुग्ध हो गए। दोनों ने एक-दूसरे को प्रणाम किया। पुनः साधु ने कहा कि श्रीअवध में कुछ दिनों से एक लीला मण्डली आई है जो अनुपम लीला करती है। प्रमोद वन के अन्दर आज उसकी बहुत ही रसीली फागलीला होने वाली है। मण्डली के महन्त ने आपके लिए

संदेश भेजा है कि जब आप यहाँ का उत्सव देखकर लौटने लगें तो अवश्य प्रमोद बन में होली-लीला का अवलोकन करें क्योंकि आप जैसे भावुकों के लिए ही ऐसी मनभावनी लीला आयोजित की गई है। श्रीगुरुदेव ने कहा कि आपने यह मेरे ऊपर अपूर्व उपकार किया है, मैं अवश्य लीला का आनन्द आज लूटूँगा।

ऐसा कहकर श्रीकनक बिहारिणी बिहारीजू को सादर अभिवंदन करके श्रीगुरुदेव उन साधु महात्मा के साथ परम उमंग में भरकर प्रमोद वन की ओर चले। ज्योंही प्रमोद वन के समीप पहुँचे त्योंही सहस्रों सूर्य के सदृश अचानक प्रकाश प्रकट हो गया जिससे उनके नेत्र चकाचौंध के कारण आप-ही-आप झप गए और जब उन्होंने अपनी आँखें खोलीं तो अन्य ही बिलक्षण दृश्य देखकर आनन्द और विस्मयवश उन्हें अपने शरीर की सुधि बिसर गई। तब साधु ने कहा कि हे महात्मन्! आप आश्चर्य में न भूलें, प्रभु की कृपा से आज दिव्य फागलीला का दर्शन कर अपने नेत्रों को सफल करें। इतना कहते-कहते उन्होंने श्रीहनुमानजी का रूप धारण कर लिया और श्रीगुरुदेव को अपने सौम्य स्वरूप से शुभ दर्शन दिए। श्रीमहाराजजी ने उन्हें बहुत ही विनयपूर्वक प्रणाम किया। श्रीमारुति ने उन्हें हृदय से लगा कर कहा कि आज इस दिव्य प्रमोद वन में आप दिव्य फागलीला का अवलोकन करें।

श्रीपवनकुमार के यह वचन सुनकर श्रीगुरुदेव आनन्द में भर कर उस प्रमोद वन को देखने लगे। उस वन के चारों ओर सात हाथ ऊँचा दिव्य प्रकाशमय परकोटा दीख पड़ा। दो हाथी दाँत के रत्नमय खम्भों में सोने के फाटक सुशोभित थे। खम्भों के निकट दो नीलम के हाथी अपनी सूँड़ ऊँची किए विराज रहे थे। द्वार पर नक्कारखाने में बहुत-से बाजे वज रहे थे। नगाड़े मेघ के समान गम्भीर नाद कर रहे थे। उस द्वार पर अस्त्र-शस्त्र से लैस धोर वीर अत्यन्त सुडौल शरीरवाले बलवान दरवान पहरा दे रहे थे। द्वारपालाधिपति ने दौड़ कर श्रीमारुति को दण्डवत् किया। श्रीवजरंगबली ने जय श्री सियाराम कहकर उसका सम्मान किया और श्रीगुरुदेव के साथ शीघ्र ही वन में प्रवेश कर गए।

ज्योंही वे अन्दर गए त्योंही मालीपति ने आकर जुहार किया। श्रीकपिपति ने उसे आज्ञा दी कि इन प्रेमी महात्मा को तुम यह सुन्दर वन चारों ओर घूमा कर दीखा दो और इन्हें फाग कुंज में पहुँचा दो। ऐसा कहकर श्रीहनुमानजी अन्तर्हित हो गए और श्रीगुरुदेव मालीपति के साथ अनुपम प्रमोद वन का अवलोकन करते हुए प्रमुदित मन से चारों और बिहार करने लगे। वहाँ उन्होंने अनार, केले, संतरे आदि के फल और फूलों से युक्त दिव्य वृक्ष देखे। इन दिव्य वृक्षों को निरखने से उनके हृदय में अनुपम आनन्द उमड़ पड़ा।

फूलों से दिव्य सुगन्धि निकल रही थी और उनपर झुण्ड-के-झुण्ड भौंरे रस-पान कर गुँजार कर रहे थे। छोटे-छोटे पहाड़ दीख पड़े जिन पर स्वच्छ और शीतल जलवाले झरने झर रहे थे। उस वन में अगणित केलि कुंज थे जो दिव्य पुष्पों से प्रकाशित हो रहे थे। जहाँ-तहाँ सुभग वापिकाएँ थी जिनमें सारस, हंस आदि पक्षी विहार कर रहे थे। उनमें मनोहर रत्नजटित सोपान थे तथा नाना रंगों के कमल खिले थे।

यत्र-तत्र शुक तथा सारिकाएँ "सीताराम-सीताराम" की सुरीली रट लगा रही थीं जिनकी ध्वनि कानों को अत्यन्त ही सरस प्रतीत होती थी। विविध प्रकार के क्रीडामृग छलांगे भर रहे थे जिन्हें देखते ही मन मोहित हो जाता था। ठाम-ठाम पर जल के फुहारे थे जिनसे अत्यन्त ही सुरभिमय जल-धारा छूट रही थी। कहाँ तक वर्णन किया जाय, उस प्रमोद वन के सामने इन्द्र का नन्दन कानन तथा कुबेर का चैत्ररथ उद्यान भी तुच्छ जान पड़ता था।

जिस वन में जगत्पति श्रीसीतारामजी विहार करते हैं, उसकी छवि को व्यक्त करने में असंख्यों शारदा और शेषनाग भी असमर्थ हैं। जहाँ-जहाँ श्री गुरुदेव जाते हैं, वहाँ-वहाँ अधिकारी मालीगण उनका अपूर्व सम्मान करते हैं। इस प्रकार वन के सुन्दर रंग-विरंगे चमकीले मणिमय पथ पर

भ्रमण करते हुए श्रीमहाराजजी बहुत-ही उत्साह के साथ फाग कुंज के समीप पहुँचे।

उस फाग कुंज की शोभा सुन्दरता को भी सुन्दर करनेवाली है। वह ऐसी मालूम होती है मानो सुन्दरतारूपी भवन में दीपक की लौ जल रही हो। उसमें क्रमबद्ध कल्पवृक्ष लगे हैं जो देखते ही मन को मोह लेते हैं। स्थान-स्थान पर रसाल के घने वृक्ष हैं जिन पर भौरों के झुण्ड गूँज रहे हैं। जुही, बेली, माधवी, चमेली आदि लताओं के जहाँ-तहाँ वितान बने हैं। उनकी रुचिर रचना विलोक कर चतुराजन की बुद्धि भी चकित हो जाती है।

विविध रंगों की पुष्पित लताओं का ही सुन्दर द्वार है जिसमें गोखा, मेहराब तथा ताज बड़े ही मनोहारी हैं। परकोटा के खम्भों, वातायनों तथा गवाक्षों पर भी पुष्पों की विचित्र चित्रकारी है। अनेक पुष्पों की भंजिकाएँ (चरखियाँ) यत्र-तत्र वायु के झोंकों से अपने आप नाच रही हैं तथा फुहारों से नाना रंगों के जल छूट रहे हैं। जो श्रीअवध-विहारिणी विहारीजू का प्यारा कुंज है, उसकी महान् छवि का वर्णन कौन कर सकता है ?

उस कुंज के मध्य में एक फूलों का अत्यन्त दिव्य वितान (चंदोवा) है। ठीक उसके नीचे एक रमणीय सुमन मंच

है जिसे देखकर करोड़ों कामदेव भी मोहित हो जाते हैं। उस मंच पर पुष्पों की ही गद्दी है जिस पर पुष्पों के ही चद्दर, तकिया तथा मसनद लगे हैं। चारों ओर सुमन रचित बहुत-सी नारियाँ सुमंगल थाल हाथों में लिए खड़ी हैं। उन्होंने नख से सिख तक फूलों का ही शृंगार किया है जिन्हे देखकर अगणित रतियाँ भी लज्जित हो जाती हैं। वे जरा भी इधर-उधर हिलती-डुलती नहीं हैं जिससे वे प्रतिमा के सदृश प्रतीत हो रही है। कुंज की शोभा का वर्णन करने में श्रुति तथा शारदा भी सकुचा रहे हैं।

उस कुंज के पास ही एक परम रम्य चौगान है जहाँ फाग की समस्त वस्तुएँ यथा स्थान सुशोभित हैं। कहीं पिचकारियों का ढेर लगा है तो कहीं विविध रंगों से भरी कमोरियों (मटकियों) का राशि है। नाना रंगों के गुलाल अगणित रत्नों की डोलचियों में रक्खे हैं तथा भारियों में सुगंधित इत्र भरे हैं। रत्नमय कनक कलशों में विविध प्रकार की सुगंधियाँ भरी हैं। किसी स्थान पर डलियों में फूलों के गेंद रक्खे हैं तो किसी स्थल पर पुष्पों की रंग-विरंगी मालाएँ सुसज्जित हैं। फाग सम्बन्धी जितनी भी उपयोगी सामग्रियाँ हैं वे भिन्न-भिन्न स्थलों पर सुशोभित हैं। अधिकारीगण उनकी संभाल कर रहे हैं और श्रीयुगलसरकार के आने की बाट जोह रहे हैं। चौगान सहित फाग कुंज देखकर श्रीगुरुदेव आनन्द में मग्न हो रहे हैं।

चारों ओर परम प्रकाशमान पारिजात के वृक्ष पुष्पों से सुशोभित हैं तथा मणिमय आँगन में जो दीप्तिमान रत्न जड़े हैं वे नक्षत्रों के सदृश दमक रहे हैं। फाग चौक के मध्य में एक श्वेत सिंहासन है जिससे अत्यन्त शीतल ज्योति छिटक रही है और वह शरद्पूर्णिमा के चन्द्रमा के सदृश मन को सुखदायक प्रतीत हो रहा है। इस प्रकार वह फाग चौक चित्त को बरबस लुभा लेता है तथा साथ-ही-साथ हृदय में दिव्य प्रेम का संचार कर देता है।

इस प्रकार फागस्थान की सुषमा श्रीमहाराजजी निहार ही रहे थे कि उन्हें जयध्वनि सुन पड़ी। उत्सुकतापूर्वक उन्होंने उस ओर दृष्टिपात किया तो एक सुन्दर विमान में स्वामिनी-स्वामीजू दीख पड़े। श्रीयुगलसरकार के परिकर प्रेम में विभोर हैं और बड़े उत्साह के साथ फाग-गान में मस्त हैं। इतने ही में शोभा के धाम दम्पति ने प्रकाशमय फाग के चौगान में प्रवेश किया और यान से परिकर सहित उत्तर पड़े। उनकी रसीली चाल देखकर राजहंसों की जोड़ी भी मोहित हो जाती है। श्रीसीतारामजी के श्वेत और श्याम शरीर की कान्ति इस प्रकार दीप रही है जैसे गंगा-यमुना एक साथ बह रही हों। आभूषणों के नग दमक रहे हैं मानों आकाश में तारे चमक रहे हों। विविध रंगों के वस्त्रों की छाया ऐसी दीपती है मानो एक साथ ही बहुत से

इन्द्रधनुष उदित हो गए हो। उस सुहावने आंगन के मध्य में विमल रत्न-सिंहासन सुशोभित है। उस पर श्रीयुगल-सरकार आकर विराज गए। उनकी छवि देखकर बहुत से रति और कामदेव भी लज्जित हो जाते हैं।

सिंहासन पर श्रीयुगलसरकार के सित और श्यामल शरीर इस प्रकार शोभा दे रहे हैं, मानो चन्द्रमा के मध्य में दामिनी और मेघ शरीर धारण कर आ बैठे हों। पिय प्यारीजू के परिकर फाग का शृंगार सजकर दोनों दिशाओं में कतार बाँध कर उमंग से भर कर खड़े हैं।

प्रभु का रुख पाकर चन्द्रकलाजू श्रीगुरुदेव के पास आईं। उनके हाथ पकड़कर उन्होंने बड़े ही स्नेह के साथ कहा कि आप इतनी दूर पर क्यों खड़े हैं। आपको श्री युगल सरकार याद कर रहे हैं। आप उनके पास चलें और फाग लीला का अवलोकन करें। ऐसा कहकर श्रीमहाराजजी को पिय प्यारीजू के पास ले गईं। वहाँ पहुँचकर श्रीगुरुदेव ने श्रीसरकार और श्रीमहारानीजू को बहुत विनीत भाव से भूमि में पड़कर दण्डवत् किया। प्रत्यक्ष दर्शन पाकर वे प्रेम के विशेष वस में हो गए और उनका शरीर रोमाञ्च से कटहल के फल के समान कण्टकित हो गया। नेत्रों में आनन्द के आँसू उमड़ पड़े। प्रेम में मग्न हुए बड़भागी गुरुदेव लाठी की तरह श्रीयुगलसरकार के चरणों में लगे।

थे। श्रीप्रभु ने अपनी विशाल भुजाओं से पकड़कर उन्हें उठा लिया और बड़े स्नेह के साथ हृदय से लगा लिया। श्रीगुरुदेव निस्तब्ध खड़े हुए टकटकी लगाकर श्रीयुगल छवि को निहारने लगे। श्रीयुगलसरकार की रूप-पयोधि में श्रीमहाराजजी के नेत्र मीन के सदृश हो गए और उनकी छवि देखते-देखते युगलरूप में ही लीन हो गए। तब स्वामी स्वामिनीजू ने आज्ञा दी कि फागकेलि को प्रेमपूर्वक देखिए।

श्रीयुगलसरकार का मनोभाव जानकार उनके परिकर सुन्दर फाग गाने लगे। उनके चारों ओर गुणीजन मनोहर साज बजाने लगे। उनके गाने की तान का चातुर्य देखकर पिया प्यारीजू उनकी प्रशंसा करने लगे। कानों को अमृत के सदृश लगनेवाली तान-तरंगों को सुनकर वहाँ बहुत-से केलिमृग जुट गए। वे अपनी सुधि भूलकर इस प्रकार स्थिर होकर संगीत सुनने लगे मानों चित्र में अंकित हों। इतना ही नहीं, चातक, हँस, चकोर, कोयल आदि पक्षी भी तन की सुध-बुध खोकर मधुर गान सुनने में मग्न हो गए।

इस प्रकार पिया प्यारीजू के परिकर सरस संगीत गाते-गाते दो दलों में बँट गए। एक ओर श्रीमारुति के नेतृत्व में सखादल हो गया और दूसरी ओर श्रीचन्द्रकलाजू के नेतृत्व में सखिदल हो गया। वे एक-दूसरे पर पिचकारी मार रहे हैं और उमंग सहित रंग उछाल रहे हैं। झोलियों में भर-भर

कर रोरी फेंक रहे हैं और साथ-ही-साथ होरी-होरी की धूम मचा रहे हैं। दोनों यूथ एक-दूसरे पर कमोरियों (मटकियों) में रंग भर कर फेंक रहे हैं और तक-तक कर फूलों के गेंद मार रहे हैं। वे परस्पर में सुगंधियों की बौछार कर रहे हैं और गुलाल इतना उड़ा रहे हैं कि आकाश अबीर से भर गया है। दोनों दल व्यंग्य वाक्यों के उच्चारण कर रहे हैं और दोनों ही ओर सुमधुर हास्य व्याप रहा है। दोनों ही यूथों के हृदय में जोश उमड़ आया और सुरति विसार कर दोनों ही दल भिड़ गए। कोई तो दूसरे के मुख पर रोरी और गुलाल मल रहा है तो कोई एक को रंग से शराबोर कर रहा है। फाग केलि के उमंग में भरकर वे बहुत प्रकार के कौतुक कर रहे हैं। इस प्रकार दोनों दल फाग खेल रहे हैं और नाना प्रकार की ललित लीलाएँ कर रहे हैं जिन्हें देखकर नवल युगल सरकार प्रमुदित हो रहे हैं।

सिंहासन पर विराज कर दिव्य दम्पति इस फागकेलि को देखकर मृदु मुसकान भर रहे हैं और सबके चित्त को लुभा रहे हैं। दोनों ही टोली के फाग के खिलाड़ी एक-दूसरी टोली पर औचक पिचकारियाँ मार रहे हैं और गुलाल आदि मुख में मल रहे हैं। कभी वे हारनेवाले को जीता देते हैं तो कभी जीतनेवाले को हरा देते हैं—इस प्रकार मनभावन कौतुक मचा रहे हैं।

श्रीगुरुदेव पास ही खड़े होकर दोनों यूथों की होली देख रहे हैं। वे कोपर में से पिचकारियों में रंग भर-भर कर पिय-प्यारीजू के हाथों में बड़ी फुरती से सौंप रहे हैं। प्रियतम अरु प्रिया श्रीमहाराजजो के हाथों से रंग भरी पिचकारियाँ लेकर दोनों ही टोलियों पर बरसा रहे हैं। इस प्रकार श्रीगुरुदेव श्रीयुगलसरकार को प्रेमपूर्वक फाग खिला रहे हैं।

इसी बीच पुरुष-दल के नायक श्रीहनुमन्तललाजू तथा स्त्री-वर्ग की अधिपति बड़भागिनी श्रीचन्द्रकलाजू श्रीयुगल सरकार के पास गईं। उनका रुख देखकर उन्होंने प्रार्थना की कि यद्यपि दोनों दल सुन्दर फाग खेल रहे हैं और साथ ही रंगों का जंग भी मचा रहे हैं तथापि उन्हें पूर्ण आनन्द नहीं आ रहा है। हम सभी इस प्रकार मनोरथ ठान रहे हैं कि अपनी-अपनी टोली में श्रीसरकार तथा श्रीमहारानीजी भी मिलकर खुल कर फाग खेलें तब फाग का रंग जमे और हमलोगों को पूर्ण आनन्द की प्राप्ति हो। हमलोग मनचाहा फाग देखें और अपने नेत्रों का सुन्दर फल प्राप्त करें। हम सभी आपकी फागलीला के दर्शन के लिए उसी प्रकार उत्कण्ठित हैं जैसे चातक शुभ स्वाति के जल के लिए व्याकुल रहता है। हे जनरञ्जन ! हे प्रभो ! हमारी यह विनती आप कृपया स्वीकार कर हमारे सुन्दर मनोरथ को पूर्ण करें।

श्रीचन्द्रकलाजो तथा श्रीमारुति के ये भाव भरे वचनामृत सुनकर श्रीसीतारामजी फाग खेलने के लिए उठ खड़े हुए।

फाग का सुन्दर शृंगार सज कर दोनों ही सरकार अपनी-अपनी टोलियों में आकर मिल गए। तब दोनों ही दल इस प्रकार हर्षित हो गए जैसे सूरज को देखकर कमल-वन प्रफुलित हो उठता है। एक ओर सखियों को साथ लिए स्वामिनी श्रीसीताजी शोभित हुईं और दूसरी ओर सखाओं को संग लिए श्रीरघुवीर विराजित हुए। उनके अंग-अंग में ऐसा अनुपम शृंगार था कि जिन्हें देखकर कोटि-कोटि रति-काम भी लज्जित हो जाते थे। वे परस्पर पूर्ण प्रम मे पग कर अत्यन्त उत्साह क साथ फाग खेलने लगे।

श्रीजनकनन्दिनी तथा श्रीरघुनन्दन अपनी-अपनी टोलियों को संग लिए आपस में फाग खेलने लगे। श्री वैदेही की सभी सखियाँ नवयौवना सुन्दरियाँ हैं और सोलहों शृंगार किए हुए मतवाले हाथियों की चाल से चलनवाली हैं। सहज ही सुन्दरी सीताजी सखियों के समूह में इस प्रकार शोभा पा रही हैं मानो छविरूप ललनाओं के समूह के बीच साक्षात् परम मनोहर शोभारूपी स्त्री सुशोभित हो। श्रीकिशोरीजी की सुन्दरता का वर्णन नहीं हो सकता, क्योंकि बुद्धि बहुत छोटी है और मनोहरता बहुत बड़ा है। श्रीरघुवीर तो कोटि मनोज लजावनिहारे हैं ही, उनके समस्त सखा भी कामदेव के ही सदृश सुन्दर हैं। सामने ही चौगान में श्रेष्ठ देवाङ्गनाएँ, जो षोडशवर्षीया युवतियाँ हैं, सुरीले स्वर में फाग गाने लगीं। उनके मनोहर गान को सुनकर मुनि ध्यान छोड़ देते हैं और कामदेव की कोकिलें भी लजा जाती हैं। मंजीर, नूपुर और सुन्दर कंकण ताल की गति पर बड़े ही सुन्दर बज रहे हैं। साथ-ही-साथ सुन्दरी और

श्यामा रमणियाँ मनमोहक नृत्य दीखा कर आनन्द की उदधि उमगा रही हैं।

दोनों दल झोलियों में भर-भर कर अनेक रंगों के गुलाल उड़ा रहे हैं तथा रत्न-डोलचियों से पिचकारियाँ भर-भर कर रंगों की झरो लगा रहे हैं। अनेक भाँति के सुगंधित चूर्णों की तथा इत्रों की बौछार कर रहे हैं तथा मृदुल पुष्प-कंदुकों से एक-दूसरे पर प्रहार कर रहे हैं। विभिन्न वर्णों के कल्पतरु के सुमनों को तथा रंग-विरंगी मालाओं को वे उछाल रहे हैं और वीच-बीच में श्रीजनकलली तथा श्रीरघुवीर के बारम्बार जय-जयकार मना रहे हैं।

इस प्रकार दोनों दलों में अत्यन्त घमासान फाग मच गया। सभी के शरीर और बस्त्र रंगों से शराबोर हो गए, कोई भी वचा नहीं। कभी सखियूथ सखादल पर धावा कर उन्हें दूर हटा देते हैं तो कभी सखावृन्द सखियों को रंग में डूबो कर दूर सरका देते हैं। इस प्रकार फाग खेलते-खेलते दोनों ओर ऐसी उमंग बढ़ी कि संकोच त्याग कर वे अपनी-अपनी जोड़ी से भिड़ गए। वरजोरी हाथों को पकड़कर चन्द्रानन पर रोरी मलने लगे और पकड़-पकड़ कर एक-दूसरे को गुलाल से लाल करने लगे तथा नाना प्रकार के रंगों में बोरने लगे। वे उन्हें वश में करके तथा अपने स्वामी-स्वामिनी की जय वोलवाकर तब प्रेमपूर्वक छोड़ देते हैं।

उसी अवसर पर प्यारी ओ प्रियतमजी आपस में होली खेलने के लिए एक-दूसरे के सम्मुख खड़े हुए। यह देखकर दोनों दल क्रीडा छोड़कर श्रीयुगल सरकार की रंगरली (खेल) देखने के लिए गोलाकार खड़े हो गए। सखा एवं सखिगण

गोलाकार होकर अनेक प्रकार के बाजे बजाने लगे तथा स्वर-राग-ताल तथा बन्धान सहित शुभ होरी गाने लगे। चारों ओर सखागण और सखिएँ विभिन्न प्रकार के रंगों से रंजित खड़ी हैं और उनके मध्य में पिय-प्यारीजू इस प्रकार शोभ रही हैं मानो बहुत से इन्द्रधनुषों के बीच में शरीर धारण कर दामिनी और घन विराज रहे हों।

नवयौवन छविमद में मतवाले तथा अगणित काम और रति के मद को हरनेवाले प्रिया-प्रियतमज इस प्रकार आपस में मनोहारी फाग खेलने लगे। दोनों ही अजब अदा के साथ तक तक कर एक-दूसरे पर पिचकारियाँ मार रहे हैं तथा अनेक रंगों के गुलाल मुट्ठियों में भर-भर कर डाल रहे हैं। वे उमंग में भर कर एक-दूसरे पर मृगमद (कस्तूरी), अरगजा और इत्र की बौछार कर रहे हैं तथा अनुपम अंगों में घनसार मिश्रित केशर चन्दन चर्चित कर रहे हैं। श्रीसियाजू तक कर प्रभु पर कमोरियों से रंग डाल रही हैं तथा फूल के गेंदों से मृदुल प्रहार कर रही हैं। इधर प्रभु सियाजु का मुख गुलाल से लाल कर देते हैं तथा उन पर सुगंधित इत्रों की बरसा कर देते हैं। इस अनुपम फागलीला को देखकर सभी परिकर बिना ही मोल बिक गए।

नवल प्रिया की लपक-झपक देखकर प्रियतम अत्यन्त आनन्दमग्न हो गए। वे चपलता त्यागकर खड़े हो गए। इसी बीच प्रियाजू आकर उनके मुख पर रोरी मल दी। तब सरकार ने उन्हें रंग में शराबोर कर दिया और ललक कर हृदय से लिपटा लिया। श्रीस्वामिनी-स्वामी की यह लीला देखकर समस्त परिकर निहाल हो गए और आनन्द में मग्न

होकर बोल उठे कि इस अनुपम छवि की बलिहारी है। प्रेमीजन रूपी कोकों के सूर्य श्रीसियारघुनन्दन की जयध्वनि की धूम मच गई।

इस प्रकार फाग खेलकर प्रिया-प्रियतमजू ने विलग होकर अपनी-अपनी टोलियों के साथ स्नान किया। इसके पश्चात् उन्होंने नवीन वस्त्र धारण कर एक साथ ही सुरुचिपूर्ण भोजन किया। प्रेमियों ने भोजन के बाद उन्हें आचमन कराकर ताम्बूल और इत्र अर्पित किए तथा गले में सुन्दर और सुगंधित मालाएँ धारण कराईं। तब श्री युगलसरकार ने प्रेमियों को मनभावती बख्शिशें दीं जिसे पाकर वे आनन्दविभोर हो गए।

फाग चौक में होली-केलि के द्वारा प्रेमियों को आनन्द प्रदान कर श्रीयुगलसरकार ने गलबहियाँ दिए फाग कुंज में प्रवेश किया और पुष्पों के सुन्दर वितान के नीचे मृदु सुमन मंच पर आसीन हुए। उनके प्रिय परिकर श्रेणीबद्ध होकर वाद्य बजाने लगे तथा सरस पदों का गान करने लगे। साथ-ही-साथ अपने नेत्रों के पत्र रूपी दोनों में भर कर अत्यन्त अनुपम युगलप्रिया की छवि-सुधा का पान करने लगे तथा उनके कोमल चरणकमलों में सभी के मन रूपी भौंरे मंडराने लगे। उनके हाव-भाव युक्त मधुर मुसकान को देखकर प्रेमीगण फूले नहीं समाते हैं। शरच्चन्द्र के सदृश उनके मुखों को सभी चकोर की तरह अनिमेष देख रहे हैं।

प्रियतमाएँ प्राणप्रिय के शरीर आनन्द से पुलकित हैं किन्तु नयन अलसाए हैं और वे बारम्बार जम्हाइयाँ ले रहे हैं। तब दिव्य दम्पति की रुचि को जाननेवाली श्रीचन्द्रकलाजू

सब प्रकार से सजा कर शुभ फाग आरती का थाल ले आई और भावसहित श्रीयुगलसरकार की उन्होंने आरती की। फिर जीवन-धन श्रीसियरघुवर का जय-जयकार कर तथा उन्हें अभिवन्दन करने के पश्चात् उनके चरणकमलों का स्पर्श कर दोनों दल हाथ जोड़ कर उनके समक्ष खड़े हो गए।

तब दिव्य दम्पति से दोनों यूथपतियों ने प्रार्थना की कि हे अलबेले सुकुमार सरकार! फाग-केलि में श्रीमान् तथा श्रीमतीजी का भारी श्रम हुआ है। इस मृदु सुमन मंच पर कृपया शयन कर उसका निवारण करें। ऐसा कहकर यूथपति अपनी-अपनी टोलियों को लेकर कुंज के बाहर चले गए। तब श्रीयुगलसरकार नूतन प्रेम के उमंग में भर कर वहाँ विश्राम करने लगे।

इस प्रकार श्रीगुरुदेव ने अति मनभावन फाग-लीला देखी। इस लीला में उन्होंने अपने हाथों से श्रीयुगलसरकार की प्रत्यक्ष सेवा करके अतिशय आनन्द प्राप्त किया। मंगलमय फाग-आरती देखकर उनके चरणकमलों में सादर नतमस्तक हुए। इसके साथ ही कंजारुण पदों को अपने हाथों से स्पर्श कर उन्होंने अपने नेत्रों से लगाया। पश्चात् अपने मन को वहीं छोड़कर प्रेमियों के साथ ही कुंज से बाहर निकल आए। ज्योंही श्रीमहाराजी कुंज से बाहर हुए त्योंही वह समस्त दृश्य अन्तर्हित हो गया। तब वे अनुपम युगल नाम का भावसहित स्मरण करते हुए अपने आसन पर प्रमुदित होकर पधारे।

—०—

नास्तिक को आस्तिक बनाना

एक डाकखाने के अफसर थे। वे अवैष्णव थे। मूर्त्ति पूजा को ढोंग मानते थे। ब्राह्मण और साधुओं में उनका जरा भी विश्वास नहीं था। शास्त्र और पुराण को वे बिलकुल नहीं मानते थे। किन्तु सौभाग्य उनका इतना ही था कि उनको धर्मपत्नी बड़ी भक्तिमति, शीलवती और श्रीरामचरणानुरागिनी थी। वह सदा श्रीमहाराजजी की शरण ग्रहण करने को उत्सुक रहती थी। संयोगवश उसके पति किसी कार्यवश घर से बाहर दूसरे नगर में चले गये। सुअवसर पाकर वह अपनी एक सखी के साथ गई और श्रीमहाराजजी से उसने मंत्रराज की दीक्षा ले ली। जब उसके पति लौटकर घर आए तब उसने दोक्षा लेने की कुछ भो चर्चा नहीं की और नित्य नियम से गुप्तरूप से श्रीमंत्रराज का जप करने लगी।

इसी बीच उसके पति ने एक रात सोते समय सपना देखा कि एक भयकर मूर्त्ति उन्हें डरा रही है और कह रही है कि मैं 'मृत्यु' हूँ, मैं आई तो थी तुम्हारी धर्मपत्नी को लेने किन्तु उन्हें अपना ग्रास नहीं बना रही हूँ क्योंकि उसका शरीर उसके श्रीगुरुदेव द्वारा दिए गए मंत्र से रक्षित है। उसके बदले मैं तुम्हें आज के दसवें दिन अपना ग्रास बना लूँगी। उस पुरुष के पुत्र ने भो ठीक यही सपना उसी रात देखा। दूसरे दिन उन्होंने अपनो धर्मपत्नी से पूछा कि तुमने किस महापुरुष से दीक्षा ग्रहण की है। तब उसने सच-सच बता दिया कि मैंने श्रीअवध के प्रसिद्ध संत पंडित श्रीरामवल्लभाशरणजी

से दीक्षा ली है और गुप्त रूप से नित्य नियमपूर्वक श्रीमंत्र-राज का जप करती हूँ। उसके पति ने उससे अपने सपने का पूरा हाल सुनाया और कहा कि तुम अपने श्रीगुरुदेव से प्रार्थना करो कि वे मेरे जीवन की रक्षा कर दें और बदले में तुम्हारी मृत्यु हो जाय क्योंकि तुम्हारे लिए वैधव्य से बड़ा दुःख और क्या हो सकता है। उसकी धर्मपत्नी ने श्रीमहाराजजी से जाकर करुण स्वर में प्रार्थना की कि सरकार ऐसी कृपा करें कि मेरी मृत्यु हो जाय और मेरे पति का जीवन बच जाय।

श्रीमहाराजजी ने उसकी करुण प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसे आशीर्वाद दिया कि जैसा तुम चाहती हो, ठीक वैसा ही होगा। उसने अपने पति से आकर कहा कि आज से ठीक दसवें दिन मेरी तो मृत्यु अवश्य हो जाएगी, किन्तु आप मेरी अन्त्येष्टि क्रिया सनातन धर्म के अनुसार ही करेंगे। साथ ही मेरी यह भी प्रार्थना है कि आप मेरे श्रीगुरुदेव को यथाशक्ति कुछ धन अर्पित कर देंगे जिससे वे मेरे निमित्त भण्डारा करा देंगे। ठीक ऐसा ही हुआ, दसवें दिन उस स्त्री की मृत्यु हो गई। उसके पति श्रीमहाराजजी का यह चमत्कार देखकर सनातन धर्म पर आस्था रखने वाले पूर्ण आस्तिक बन गए।

शरणागत को प्राणदान

जयपुर में कृष्णचन्द्र नामक एक वैश्य रहते थे। उनके पिता ने एक दिन एक निपुण ज्योतिषी को अपने घर बुलाया। सारे प्रान्त के लोग गणक की वाणी को सत्य मानते थे। ये ग्रह के फल ऐसी कुशलता से बतलाते थे कि वे कभी झूठे नहीं होते थे। इसके अतिरिक्त ये नष्ट हुई जन्मपत्री को बात की बात में बना देते थे। किसकी कितनी आयु है, इसे बतलाना तो उनके लिए बाएँ हाथ का खेल था। जब कृष्णचन्द्र के पिता ने अपनी जन्मपत्री उन्हें दिखलाई, तब गणक ने कहा कि अब आपको महान् दुःखदायिनी दशा लगेगी—प्राण, धन, ऐश्वर्य सर्वस्व की हानि होगी। यह सुनकर कृष्णचन्द्र के पिता शोक से विह्वल हो गए। उन्होंने तत्काल ही अपने पुत्र कृष्णचन्द्र का जन्मपत्र उन्हें देखने को दिया। उसे देखकर ज्योतिषीजी बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि कृष्णचन्द्र के भाग्य से ही आप धन, सुख और महान् ऐश्वर्य का भोग कर रहे हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश इसे भी आज से पन्द्रहवें दिन मारकेश का योग है और सम्भवतः इसके प्राणों की हानि है।

इस प्रकार ग्रह-फल बताकर गणक तो चले गए किन्तु कृष्णचन्द्र के माता-पिता के हृदय में शोक व्याप गया। ऐसे संकट-काल में भी कृष्णचन्द्र जरा भी घबराये नहीं। उन्होंने अपने माता-पिता को आश्वासन दिया और कहा कि मैं श्रीअवध के महान् संत पण्डित श्रीरामवल्लभाशरणजी की शरण ग्रहण करूँगा। वे साक्षात् भगवान राम के ही अवतार हैं और मुझे

दृढ़-विश्वास है कि वे मेरे प्राणों की रक्षा अवश्य करेंगे। यह सुनकर उनके माता-पिता को अपूर्व शान्ति मिली और उन्होंने कृष्णचन्द्र को श्रीअवध जानें की अनुमति दे दी।

जब मारक में केवल सात दिन शेष थे तब कृष्णचन्द्र श्रीअवध श्रीमहाराजजी के पास पहुँचे। उन्होंने प्रेमपूर्वक आदरसहित उनके चरणों में प्रणाम किया और आर्त्त होकर शरण में लेने की सविनय प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना स्वीकार कर करुणामय श्रीगुरुदेव ने उन्हें अपनी शरण में ले लिया और श्रीमंत्रराज की दीक्षा दी। एक दिन अवसर पाकर एकांत में कृष्णचन्द्र ने उनसे अपने मारकेश की बात कही। श्रीगुरुदेव ने कहा कि यद्यपि गणक की बात बिलकुल सच्ची है, पर श्रीहनुमानजी तुम्हारी रक्षा करेंगे और सूली का संकट सूई की तरह टल जाएगा। हे वत्स! तुम हृदय में जरा भी संशय न करो और एक सप्ताह यहीं निवास कर भगवान का भजन करो।

श्रीमुख के ये वचन सुनकर कृष्णचन्द्र उत्साह के साथ श्री सद्‌गुरु की शरण में ही निवास करने लगे। जैसे परीक्षित् को अपनी मृत्यु-तिथि ज्ञात होने पर, उन्होंने अपना मन भगवान में ही लगा दिया था, उसी प्रकार श्रीगुरुदेव की कृपा से कृष्णचन्द्र में भी भगवत्परायणता, भगवद्विश्वास, भगवद्भक्ति और शुभ भगवदीय कर्म के मधुर तथा निर्मल भाव जाग्रत हो गए। वे श्रीअवध के श्रीयुगल सरकार को देखकर मुग्ध होते और उनकी सारी आसक्ति और ममता श्रीजनकलली ओ श्रीरघुवीर में ही केन्द्रित हो गई। इसलिए प्रात: से रात्रि तक कृष्णचन्द्र जो कुछ भी करते, सब अपने प्रभु

की प्रीति के लिए, उन्हीं का काम समझकर करते। चूँकि अपने नित्यकर्म भी, भगवान का काम समझकर ही करने लगे, इससे काम करने में उन्हें विशेष सुख मिलता। शुद्ध कर्तव्यबुद्धि से किए जानेवाले कर्म में भी सुख है—जैसे स्नान, भोजन, शौच आदि नित्यकर्म मनुष्य को अवश्यमेव करना ही पड़ता है; किन्तु उसमें वह सुख नहीं है, जो अपने प्राणप्रिय प्रभु को प्रसन्नता के लिए किए जानेवाले कर्म से ही होता है। उसमें रूखापन तो कभी होता ही नहीं, एक विशेष प्रकार के रस को अनुभूति होती है, जो प्रेमी को पद-पद पर उल्लसित और उत्फुल्लित करती रहती है और वह नित्य-नूतन उत्साह से प्रभु का कार्य करता रहता है। परंतु इस प्रकार के कार्य में जो उसे अप्रतिम रसानुभूति मिलती है, उसका कारण कर्म या उसका फल नहीं है। उसका कारण है—प्रभु में केन्द्रित आसक्ति और ममत्व।

इसी प्रकार कृष्णचन्द्र प्रातःकाल उठकर भगवान् का स्मरण करते। प्रतिदिन सरयू-स्नान करते। प्रातः और सायं श्रीयुगल सरकार की आरती देखते और बहुत-ही प्रेम के साथ स्तुति गान करते। भगवान की कथा मनोयोगपूर्वक सुनते। सदा 'सीताराम-सीताराम' के नाम का जप करते। संतों के दर्शन-स्पर्श करते। श्री गुरुदेव को बहुत ही विनयपूर्वक अभिवंदन करते। ऐसा करते हुए सौभाग्यवश वे सज्जन मारक के दिन भी इन्हीं शुभ कार्यों में संलग्न रहे। रात में ब्यालू करके जब ड्योढ़ी को पार करके श्रीगुरुदेव के दर्शन करने जाने लगे तब सहसा उनका हाथ दीवार पर पड़ गया और उनकी उँगली में ऐसी महान् पीड़ा हुई मानो उसमें कोई तीक्ष्ण कण्टक गड़ गया हो। जब कृष्णचन्द्रजी

सीढ़ी द्वारा ऊपर की मंजिल पर पहुँचे तब उस उँगली की पीड़ा ने भीषण रूप धारण कर लिया और वह वेदना बिजली की तरह इतनी शीघ्रता से बढ़ी कि समस्त शरीर में व्याप गई और सम्पूर्ण शरीर नीलवर्ण का हो गया। इधर तो कृष्णचन्द्र दर्द से कराह रहे थे और मृतवत् हो रहे थे, उधर संतों ने लालटेन लेकर दीवार के उस स्थल को जाकर देखा जहाँ कृष्णचन्द्र का हाथ पड़ा था और पाया कि एक बड़ा काला बिच्छू दीवार पर ही सटा है।

तब श्रीमहाराजजी के पास जाकर संतों ने निवेदन किया कि कृष्णचन्द्र को एक बड़े बिच्छू ने डंक मार दिया है। यह सुनकर श्रीगुरुदेव तत्क्षण उसके समीप गए और संतों के द्वारा बहुत-से उपचार कराए और साथ ही अपना करकमल उसके मस्तक पर फेर दिया। समीप में उपस्थित सभी लोगों को महान् आश्चर्य हुआ कि तत्काल ही कृष्णचन्द्र को नींद आ गई और जब वे आधी रात के समय जगे तब उनकी सारी पीड़ा दूर हो गई थी। वे बिलकुल स्वस्थ थे।

दूसरे दिन प्रातःकाल श्रीमहाराजजी के पास गए और उनके श्रीचरणों में मस्तक रख कर सादर अभिवादन किया। श्रीगुरुदेव ने कहा कि श्रीहनुमानजी की कृपा से तुम्हारा मारकेश टल गया। श्री मारुति संकट से छुड़ानेवाले और सारी पीड़ाओं को हरनेवाले हैं। अब तुम सुखपूर्वक अपने घर जाओ और सदा भगवान के भजन में अपना मन लगाए रहना। ईश्वर की कृपा से तुम्हारे ऐश्वर्य की वृद्धि होगी और तुम भगवद्‌भजन में तल्लीन रहकर सुखी जीवन व्यतीत करोगे।

श्रीगुरुदेव का अमोघ आशीर्वाद प्राप्त कर तथा उनका चरणोदक लेकर कृष्णचन्द्र घर सकुशल लौट आए। श्रीमहाराजजी की कृपा से मारकेश तो टला ही, उनका भाग्य भी चमक उठा। उनके वैभव की अपार वृद्धि हो गई। लक्ष्मी नित्य नया-नया रूप धारण कर उनके घर पधारने लगीं। इस आशातीत परिवर्तन को देखकर कृष्णचन्द्र के माता-पिता को श्रीमहाराजजी पर अपार श्रद्धा हो गई। उन्होंने अपने पुत्र से कहा कि तुम अपने श्रीगुरुदेव से प्रार्थना करो कि वे हमारे घर पधार कर, हमारी कुटिया को अपने श्रीचरणों से पवित्र करें। अपने पूज्य माता-पिता की आज्ञा से कृष्णचन्द्र श्रीमहाराजजी के पास गए और उनसे अपने घर पधार कर पुनीत करने की विनती की। उनको विनती स्वीकार कर श्रीगुरुदेव जयपुर पधारे और सात दिनों तक उनके सदन में निवास कर उन्हें अपने सत्सङ्ग से कृतार्थ कर दिया। उस भाग्यशाली परिवार के साथ-ही-साथ जयपुर के अन्य निवासियों ने भी श्रीगुरुदेब के उपदेशामृत का पान कर अपने जीवन को सफल कर लिया। कितने ही भक्तों ने श्रीगुरुदेव से दीक्षा ली और परम भागवत बन गए।

—:●:—

मारक निवारण चरित्र

एक अग्रवाल वैश्य थे। इनका शुभ नाम राम मुकुट था। मुकामा शहर में इनका घर था। इनके सभी कुटुम्बी धर्मात्मा थे। इनके घर एक गणक आए। इन्होंने अपनी जन्म-पत्री उन्हें दिखाया और अपना ग्रह-फल पूछा। विख्यात ज्योतिषी ने कहा कि तुम्हारी ग्रह-दशा भारी भयंकर है। दो ही महीने के अन्दर तुम्हारी मृत्यु होने की संभावना है। यह सुनकर वे वैश्य अत्यन्त विह्वल हो गए।

राम मुकुट के एक मामा थे जिनका नाम मिश्री लाल था। ये श्रीगुरुदेव के कृपापात्र थे। मिश्री लाल नें अपने भानजे को आश्वासन दिया कि तुम्हें घबड़ाने को जरा भी आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हें अपने श्रीगुरुदेव के पास ले चलूँगा। वे समर्थ पुरुष हैं। उनको कृपा से तुम्हारा संकट अवश्य टल जाएगा। तुम मेरे साथ श्रीअवध चलो।

यह सुनकर राम मुकुट अपने मामा के साथ श्रीअबध में श्रीमहाराजजी की शरण में आए। तब मिश्री लाल ने आर्त्त होकर अत्यन्त कातर स्वर में श्रीगुरुदेव से प्रार्थना की। कि हे प्रभो ! ज्योतिषी ने बतलाया है कि दो ही महीने के अन्दर मेरे भानजे का निधन होगा। अतः कृपया आप इसकी रक्षा करें। करुणासिंधु श्रीगुरुदेव ने कहा कि तुम अधीर मत होओ, श्रीपवनकुमार राम मुकुट की अवश्य रक्षा करेंगे।

एक परमहंस रामानुज दास थे जो श्रीमहाराजजी के पास ही रहा करते थे। उनसे भी राम मुकुट का परिचय था। अतः परमहंसजी भी सदा उसका हित चाहते थे। इसलिए उन्होंने भी राम मुकुट के मारक निवारण की प्रार्थना

श्रीगुरुदेव से की। श्रीमहाराजजी ने हँस कर कहा कि जिस पर आपकी कृपा दृष्टि पड़ जाय वह अवश्य ही सुरक्षित रहेगा। इस प्रकार श्रीगुरुदेव को अत्यन्त प्रसन्न जानकर और अपना मनोरथ सफल मानकर, मिश्री लाल अपने भानजे को लेकर घर लौट आए।

जब वे लौट गये तब परमहंसजी ने श्रीगुरुदेव को राम मुकुट की सुरति कराई और प्रार्थना की कि उसके प्राणों की रक्षा के लिये कृपया आप अनुष्ठान करवाएँ। उनकी प्रार्थना स्वीकार कर श्रीगुरुदेव ने अनुष्ठान का प्रबन्ध करा दिया। किन्तु अनुष्ठान में एक आश्चर्यजनक घटना दीख पड़ी। अनुष्ठान के लिये जो घट स्थापित किया गया था, वह सहसा चक्कर खा गया। वह घूम कर पुनः वैसे ही स्थिर हो गया जैसे प्रथम दिन स्थापित किया गया था। श्रीमहाराजजी ने परमहंसजी को बुलाकर कहा कि राम मुकुट पर इस समय कोई परम भयंकर आफत अवश्य आ गई है किन्तु आप यह निश्चय जानिए कि उसके प्राणों की हानि या शरीर को कोई कष्ट नहीं हो सकता। इस प्रकार श्रीगुरुदेव ने स्पष्ट बताकर राम मुकुट के पास एक पत्र भेजवा दिया।

राममुकुट श्रीगुरुदेव के पास आए और दौड़ कर उनके श्रीचरणों में दण्ड की भाँति गिर पड़े। जब श्रीमहाराजजी ने उससे उसकी कुशल पूछी तब

उसने हाथ जोड़ कर इस प्रकार अपना हाल निवेदन किया। हे कृपासिन्धु ! परसों मैं ताँगे पर बैठकर घर से रवाना हुआ। बीच मार्ग में ही घोड़ा बिगड़ गया और कोचवान के बहुत संभालने पर भी वह वश में नहीं आया और एक दीवार से टकरा गया। फलत: वह घोड़ा बहुत ही घायल हो गया। और मेरा टाँगा भी चूर-चूर हो गया। हे गुसाईं ! मैं भी बुरी तरह गिरा किन्तु मुझे तनिक भी चोट नहीं आई। हे प्रभो ! आपकी मुझे पर कृपादृष्टि थी, इससे मैं बाल-बाल बच गया। तब परमहंसजी ने हर्षित होकर कहा कि श्रीगुरुदेव ने ही तुम्हें प्राणदान दिया है। जिस समय यह घटना घटी थी, श्रीगुरुदेव ने भी यहाँ उसे स्पष्ट कह दिया था। मैंने कृपापत्र भी तत्काल ही तुम्हारे पास भेजा था किन्तु वह तुम्हें मिला नहीं।

यह सुनकर राम मुकुट ने कहा कि यह दुर्घटना देखकर मेरे हृदय में महान् भय छा गया और इसीसे मैं उसी समय श्रीअवध के लिए चल पड़ा। श्रीगुरुदेव ने कहा कि तुम्हारी विपत्ति दूर हो गई। जो थोड़ी-सी शेष है वह भी परमहंसजू दूर कर देंगे। राममुकुट श्रीगुरुदेव का आशीर्वाद प्राप्त कर और उनकी आज्ञा ले कर अपने घर चले आए।

इसके कुछ दिनों के बाद राम मुकुट को हैजा हो गया। उनकी हालत बिगड़ती ही गई और वे मरणासन्न हो गए।

सभी परिवार के लोग घबड़ा गए और उनके जीवन की आशा छोड़ दी। उनकी माता ने परमहंसजू के द्वारा श्रीगुरुदेव के पास उनका हाल पठाया। उन्होंने जाकर श्रीमहाराजजी से राम मुकुट के प्राणों की रक्षा के लिए विनती की। श्रीगुरुदेव ने अभिमंत्रित जल दिया। उसे लेकर परमहंसजू शीघ्र ही राम मुकुट के घर आए। परमहंसजू को देखकर सभी परिवारवाले उसी प्रकार हर्षित हो गए जैसे किसी डूबनेवाले को नाव का सहारा मिल गया हो।

परमहंसज तत्काल राम मुकुट के पास गए और उन्हें विलकुल बेहोश पाया। उन्होंने शीघ्र ही अभिमंत्रित जल पिलाया। जैसे ही जल कण्ठ के अन्दर गया, राम मुकुट को होश आ गया। पुनः परमहंसजू ने दूसरी बार मुख में जल डाला। इस जल के पान करते ही राम मुकुट उठ कर वैठ गए। श्री गुरुदेव की कृपा से रोग का निवारण इस प्रकार हो गया जैसे श्रीसरयुजी में स्नान करने से पाप कट जाते हैं। इसके वाद एक सप्ताह के अन्दर ही सारी निर्बलता दूर हो गई। तब परमहंसजू राम मुकुट को लेकर श्रीअवध आए और और उन्होंने गुरुदेव के श्रीचरणों में विनयपूर्वक प्रेमसहित प्रणाम किया। जब कृपासिन्धु श्रीगुरुदेव ने कुशल पूछी तब राम मुकुट ने अपना हाल ज्यों-का-त्यों सुना दिया। तब श्रीमहाराजजी ने हँस कर कहा

कि तुम्हारा बड़ा भारी अरिष्ट था किन्तु परमहंसजू ने उसे दूर कर दिया। यह निश्चय जानो कि अनिष्ट ग्रह टल गया और अब तुम सदा परमहंसजू का गुणगान करते रहो।

श्रीगुरुदेव के ये मनोहर वचन सुनकर परमहंसजू ने कहा कि जिस पर सरकार की कृपा हो जाए उसे मारक ग्रह कर ही क्या सकता है। जब हमारे सिर पर आप विद्यमान हैं, तब आपके ही बल से हम सभी संत निर्भय हैं। इसके बाद परमहंसजू ने राम मुकुट से कहा कि जल लेकर तुम श्रीगुरुदेव के चरणकमल धोओ और उस चरणोदक को लेकर घर जाओ। वहाँ नित्य नियम से इसका पान करना और सब कुटुम्बियों को इसका पान कराना जिससे उनके भवरोग सदा के लिए दूर हो जायँ। राम मुकुट ने वैसा ही किया। श्रीगुरुदेव ने अपना हाथ उसके सिर पर फेर दिया और कहा कि अब घर जाकर आनन्दपूर्वक रहो। राम मुकुट श्रीगुरुदेव का आशीर्वाद प्राप्त कर प्रसन्नतापूर्वक घर चले आए और सभी से कहा कि श्रीमहाराजजी भक्तवत्सल हैं।

—:❀:—

श्रीपरमहंसजी का रोग निवारण

एक बार राम मुकुट की माता आदि के साथ परमहंस रामानुज दासजी चित्रकूट को यात्रा करने गए। वहाँ उन्होंने अत्यन्त उमंग में भर कर मंदाकिनी में सबके साथ स्नान किया तथा कामादगिरि की परिक्रमा बड़े उत्साह के साथ की। उन्होंने हनुमान धारा, गुप्त गोदावरी आदि प्रसिद्ध स्थानों के दर्शन किए। अन्त में वे स्फटिकशिला के पास सभी लोगों को ले गए।

यह स्फटिकशिला वही है जहाँ एक बार श्रीरघुनाथ ने अपने हाथों से अनेक प्रकार के फूलों के गहने बनाए और वे गहने बड़े ही आदर के साथ श्री वैदेही को धारण कराए। उसी समय इन्द्र का पुत्र जयन्त कौए का रूप धारण कर आया और श्रीकिशोरीजी के चरणों में चोंच मारकर भागा। जब रक्त वह चला, तब श्रीरामजी ने जाना और धनुष पर सरकंडे का वाण संधान कर उस कौए पर चला दिया। मंत्र से प्रेरित होकर वह ब्रह्मबाण कौए का पीछा करने लगा। कौआ अत्यन्त भय से व्याकुल होकर वहाँ से भागा और अपना असली रूप धर कर अपने पिता इन्द्र के पास गया। किन्तु श्रीरघुबीर का विरोधी जानकर इन्द्र ने उसकी रक्षा करने से इनकार कर दिया। तब वह ब्रह्माजी के पास गया, वहाँ भी उन्होंने उसको नहीं रक्खा। पश्चात् वह शिवजी की शरण में गया, किन्तु उन्होंने भी उसे रघुनाथ का द्रोही जानकर, बैठने को भी नहीं कहा। जब वह निराश होकर भय से व्याकुल हो उठा तब नारदजी को उसे देखकर दया आ गई और उन्होंने उसे समझाया कि तुम्हारी रक्षा का अब एक ही उपाय है और वह

यह कि श्रीरघुनाथजी की ही शरण ग्रहण करो। यह सुनकर वह श्रीरामजी के चरणों पर गिरकर आर्त्त होकर पुकार उठा—हे शरणागतवत्सल प्रभो ! हे दयालु रघुराई ! मेरी रक्षा कीजिए। तब दयालु प्रभु ने उसकी अत्यन्त आर्त्त पुकार सुनकर उसे एक आँख का काना करके छोड़ दिया। उसने मोहवस द्रोह किया था, इसलिए यद्यपि उसका बध ही उचित था, किन्तु प्रभु ने कृपा करके उसके प्राण नहीं लिए

स्फटिकशिला के दर्शन से सभी को बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके बाद यकायक श्रीपरमहंसजी बीमार पड़ गए। अनेक उपचार किए गए किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। जितनी भी तरह की औषधियाँ खिलाई जातीं, उनका कुछ भी प्रभाव देखने में नहीं आता। दिनोंदिन उनकी हालत खराब ही होती गई और वे बहुत ही निर्बल हो गए।

ऐसी ही अवस्था में राम मुकुट की माता आदि उन्हें श्रीअवध ले आईं। अयोध्याजी में उनका इलाज किया गया लेकिन कोई लाभ देखने में नहीं आया। जब वे मरणासन्न हो गए तब उन्होंने श्रीगुरुदेव से प्रार्थना की। श्रीमहाराजजी ने कहा आपके निरोग होने का एक ही उपाय है और वह यह कि आप जो द्रव्य संग्रह कर रक्खे हैं उनका व्यय आप परमार्थ के कार्यों में करें। श्रीपरमहंसजी तो अपने जीवन से निराश-से हो गए थे, किन्तु श्रीगुरुदेव के वचन सुनकर उन्होंने अपने सारे द्रव्य परमार्थ के प्रसंगों में ही लगा दिया। इसका फल आश्चर्यजनक देखने में आया। वे कुछ ही दिनों में बिल्कुल स्वस्थ ही नहीं हुए, बल्कि उनका शरीर पहले से और भी सुडौल हो गया और वैसे ही प्रसन्न हो गए जैसे कोई योद्धा संग्राम में विजयी होने के उपरांत होता है।

—:❀:—

शिशु को प्राणदान

एक बार दरभंगा जिला के निवासी गुरुसहाय बाबू अपनी धर्मपत्नी तथा एक छोटे बच्चे के साथ श्रीअवध तीर्थ करने आए। ये श्रीगुरुदेव के स्थान में ही ठहरे और अपनी पत्नी तथा शिशु सहित श्रीमहाराजजी के दर्शन करने गए। उन्होंने श्रीगुरुदेव को बहुत ही विनीत भाव से प्रणाम किया। उनकी धर्मपत्नी भी अपने बच्चे को एक तरफ सुलाकर और कपड़ा ओढ़ा कर श्रीगुरुदेव के श्रीचरणों में नतमस्तक हुईं।

इसी समय स्थान के श्रीपरमहंसजी बहुत ही घबराए हुए श्रीगुरुदेव के समीप गए और कान से लगकर कहा कि हे श्रीमहाराज ! आप इस दम्पति को थोड़ी देर के लिए यहाँ से दूर हटा दें और कृपया एकान्त करके मेरी एक विनती सुन लें। तब श्रीगुरुदेव ने उनलोगों से कहा कि आपलोग शिशु को यहीं सोने दें और थोड़ी देर के लिए बाहर चले जायें जिसमें एकान्त में मैं परमहंसजू से बातें कर सकूँ।

श्रीगुरुदेव का आदेश पाकर दम्पति बाहर चले गये और परमहंसजी ने किवाड़ बंद कर कुण्डी लगा दी। उस समय परमहंसजी का सम्पूर्ण शरीर काँप रहा था, वे भय से व्याकुल होकर श्रीगुरुदेव से विनती करने लगे कि हे करुणासिंधु

महाराज ! अभी-अभी मुझसे भारी अनर्थ हो गया है। यह गुरुसहाय बाबू का शिशु जो इस कपड़े के नीचे सोया है, उसका मुझे जरा भी ध्यान नहीं रहा और जब मैं यहाँ से जाने लगा तब मेरे पैर इसकी छाती पर जोरों से पड़ गए और यह अवश्य ही मर गया होगा। इतनी विद्युत्गति से यह घटना घटी कि बच्चे ने जरा भी रोया नहीं। हे प्रभो ! इसके मरण से एक तो मेरी चारों ओर बदनामी हो जाएगी और दूसरा शिशुमारण का भारी पाप मुझे लगेगा। हे नाथ ! आप कृपया इसे जीवित कर इन दोनों पापों से मुक्त कर दें। ऐसा कह कर वे अकुला कर श्रीगुरुदेव के चरणों पर गिर पड़े।

श्रीमहाराजजी ने मुसकरा कर कहा कि हे महात्मा ! आप जरा भी घबराएँ नहीं। आइए, मैं शिशु को देखता हूँ। ऐसा कह कर श्रीगुरुदेव बच्चे के पास गए और उस पर ओढ़ाए हुए वस्त्र को हटा कर उसके मस्तक पर अपना हाथ तीन बार फेर दिए। तब तत्काल ही शिशु रोने लगा मानो नींद से जग उठा हो। तब श्रीमहाराजजी ने दम्पति को अन्दर बुलाकर, उस बच्चे की माँ से कहा कि इसे भूख लगी है, तुम इसे दूध पिला दो। यह सुनकर उस स्त्री ने बड़े स्नेह से अपने शिशु को उठा लिया और अपना स्तनपान कराने लगी। स्तनपान करके वह बच्चा किलकारी मारने लगा जिसे देखकर श्रीपरमहंसजू प्रमुदित हो उठे। दम्पति श्रीगुरुदेव से विनती करके और मनोवांछित वर पाकर शिशु के साथ आनन्दपूर्वक विदा हुए।

—:o:—

द्विजतनय रक्षण

बहुत-ही क्षीणकाय बच्चे को लेकर एक ब्राह्मण श्रीगुरुदेव के पास आए। वे अत्यन्त दुःख से व्याकुल होकर श्रीमहाराजजी के चरणों में गिर कर कृपा की याचना करने लगे। करुणानिधान श्रीगुरुदेव ने कहा कि आप अपने दुःख का कारण तो बताएँ। यह सुनकर वे अपनी करुण कहानी सुनाने लगे।

उन्होंने कहा कि मैं सरयूपारी ब्राह्मण हूँ। मेरा नाम हरिशंकर है। मैं बरबस आपकी शरण में आया हूँ यह मेरा इकलौता पुत्र है। इसके ऊपर हमारा समस्त परिवार निर्भर है। दो वर्षों से इसकी हालत बहुत ही खराब हो गई है। इसे एक प्रेत लग गया है जिससे यह सदा दुःख पाता रहता है। हम इसे नाना प्रकार के पुष्टिकारक पदार्थ पवाते हैं पर कुछ भी इसके अंग नहीं लगता। प्रतिदिन इसके शरीर में प्रेत प्रवेश कर जाता है और नाना भाँति के उपद्रव करता है। जहाँ तक हमसे बन सकता है, हम यत्न करके हार गए किन्तु ज्यों- ज्यों यत्न हमने किए त्यों-त्यों कुपित होकर इस प्रेत ने और विकराल रूप धारण कर लिया।

तव हृदय में हार मानकर हमने यत्न करना विलकुल ही छोड़ दिया। परसों जब वह प्रेत इसके अन्दर आकर नाना भाँति के ऊधम मचाने लगा और इस बालक को इतना तंग किया कि इसके प्राण कण्ठगत हो गए, तब मैं इस बालक की दयनीय दशा देखकर बहुत ही भयभीत हो गया और प्रेत से बिनती की। हे प्रेत ! आप हमारी विनय सुनें, हम सभी आपकी शरण में आए हैं। आप इस ब्राह्मण-कुल पर दया कीजिए और अब कृपा करके इस बालक को छोड़ दीजिए। इसके वदले में आप जो चाहें, वह हमलोग करने को तैयार हैं।

यह सुनकर वह प्रेत प्रसन्न हो गया और कहा कि यदि आप इस बालक का कल्याण चाहते हो तो कल प्रातः काल ही इसे लेकर श्रीअवध प्रयाण कीजिए। वहाँ जानकीघाट पर गुणों के धाम एक संत रहते हैं जिनका शुभ नाम श्रीरामवल्लभाशरणजी है। वे भक्तों की विपत्ति को दूर करने वाले परम समर्थ महापुरुष हैं। वे वास्तव में भगवान राम के ही अवतार और पतितों का उद्धार करने वाले उदार पुरुष हैं। आप उनकी शरण में अपने इस पुत्र को ले जायँ और अपना सब वृत्तांत उनसे निवेदन करें।

तब मैं भी इसके शरीर के अन्दर प्रवेश कर उनसे कुछ याचना करूँगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे मेरा मनोरथ

अवश्य सफल करेंगे। आप भी यह निश्चित रूप से जान लें कि उसी समय आपका यह पुत्र बिलकुल निरोग हो जायगा। ऐसी मधुर वाणी कहकर वह प्रेत इसके शरीर से बाहर निकल गया।

हे नाथ! इसीसे मैं इस बालक को साथ लेकर आपकी शरण में आया हूँ। इस प्रकार आर्त्त होकर अपनी करूण कथा सुना कर वे चुप हो गए। यह कौतुक देखकर स्थान के अनेक संत वहाँ इकट्ठे हो गए। उसी समय वह बालक जम्हाइयाँ लेने लगा और क्षण भर में उसके नेत्र अँगारे की तरह लाल हो गए। साँसें जोरों से चलने लगीं। शरीर के अंग काँपने और ऐंठने लगे। सहसा मुखाकृति बहुत ही भयानक हो गई और उसका मुँह जोर-जोर से घूमने लगा। सभी संत यह देखकर विस्मित हो गए।

उस बालक की यह दयनीय दशा देखकर श्रीगुरुदेव के हृदय में करुणा का संचार हो गया। उन्होंने प्रेत को सम्बोधन कर कहा कि तुम्हें तो ब्राह्मण की सेवा करनी चाहिए, उलटे तुम द्विजसुत को सता रहे हो और प्रतिदिन पाप की गठरी अपने पल्ले बाँध रहे हो। पूर्वकृत पाप के कारण ही तुमने ऐसी मलिन योनि पाई है और अब भी तुम पाप कर रहे हो, तो आगे तुम्हारी क्या दशा होगी? अपने मन में यह विचार कर मेरी सीख सुनो और पाप करने की बात विष

के समान समझ कर त्याग दो। दूसरे को कष्ट न देकर, अपनी शक्ति के अनुसार सदा सबका हित करो। मेरे समक्ष प्रण कर लो कि अब फिर कभी इस बालक के शरीर के अन्दर न आना और दूसरे भी किसी प्रकार से इसे दुःख न देना और नित्य राम नाम का स्मरण करना।

इस प्रकार उपदेश देकर श्रीगुरुदेव चुप हो गए। यह उपदेश सुन कर प्रेत प्रसन्न हो गया और श्रीमहाराजजी के श्रीचरणों में विनयपूर्वक अपना मस्तक नवाया। शीघ्र ही सौम्यरूप धारण कर उसने विनती की कि हे करुणासिन्धु! हे अशरण शरण! हे पतित जन तारण! हे श्रीरामरूप! मेरे कष्ट का आप शीघ्र ही निवारण करें। कृपया अपना चरणोदक पान करा दें और हृदय में थोड़ी-सी दया लाकर, मेरे मस्तक पर अपना करकमल फेर दें।

हे नाथ! आपके पावन स्पर्श से तथा चरणामृत के पान से मेरे पापों का नाश हो जायगा और मैं पवित्र हो जाऊँगा। मैं ऊधम मचाना सदा के लिए छोड़ दूँगा, किसी के मन को नहीं दुखाऊँगा तथा आज से ब्राह्मण-तनय को कभी न सताऊँगा। जितने दिनों तक इस संसार में जीवित रहूँगा, सत्कर्मों से प्रेम करूँगा और प्रभु के नाम-यश का प्रेमपूर्वक गान करूँगा और आपकी कृपा से अन्तकाल में इस पापमय प्रेतयोनि त्यागकर अभय पद प्राप्त करूँगा।

प्रेत की प्रार्थना सुनकर श्रीमहाराजजी ने उस बालक को अपना चरणोदक दिया और बहुत ही स्नेह के साथ उसके मस्तक पर हाथ फेर दिया। श्रीगुरुदेव की कृपा से वह प्रेत कृतकृत्य हो गया और शरीर की सुधि विसार कर उनके श्रीचरणों में गिर पड़ा तथा श्रीमहाराजजी का जय-जयकार कर उस बालक के शरीर को छोड़कर शीघ्र ही चला गया।

उस प्रेत से मुक्ति पाकर वह बालक सुखी हो गया। इस लीला को देखकर सभी संत श्रीगुरुदेव का जय-जयकार मनाने लगे। बालक को स्वस्थ देखकर, ब्राह्मण हर्ष समेत श्रीमहाराजजी के चरणों में नतमस्तक हुए और कहा कि हे कृपानिधान ! मेरी सुजीवन लता बिलकुल सूख गई थी किन्तु आपने उसे पुनः हरा कर दिया। अब सदा ही आप अपनी कृपा मुझ पर बनाए रहें। ऐसा कहकर वे ब्राह्मण अपने पुत्र को साथ लेकर सानन्द अपने भवन को सिधार गए।

—:★:—

प्रेतवाधा निवारण

श्रीअवध में एक अग्रवाल वैश्य थे जिनका नाम रामकृष्ण था। वे धनी-मानी थे और उनका व्यापार भी खूब चलता था। अयोध्या प्रसाद उनके पुत्र थे जो सब प्रकार से व्यापार में कुशल और बहुत-ही योग्य पुरुष थे। एक प्रेत उन्हें सताने लगा और जब चाहे तब उन्हें दबा देता था। वह नाना प्रकार के भयानक रूप दीखाता जिससे अयोध्या घबरा उठते थे। वे आठ-दस दिनों तक पागल की तरह अनर्गल बकवास करते रहते थे। दस दिनों के बाद जब उन्हें होश आते तब पुनः वह प्रेत उन पर चढ़ बैठता और फिर उनका हाल पागल-सा ही हो जाता। इस प्रकार उनका जीवन बहुत-ही दुःखमय हो गया।

अपने पुत्र की दशा देखकर रामकृष्ण सदा चिंतित रहते थे और उन्होंने प्रेतवाधा को दूर करने के लिए अनेक प्रकार के यत्न भी किए किन्तु वे सभी व्यर्थ गए। एक दिन जब वह प्रेत अयोध्या को दुःख देने लगा तब तंग आकर रामकृष्ण ने उस प्रेत से कहा कि हे प्रेत ! आप कौन हैं और क्यों मेरे पुत्र को सता रहे हैं। किस कारण हम सबों को परेशान कर रहे हैं।

यह सुनकर प्रेत बोला कि तुम अनयायी हो। मैं तुम्हारा अपना दामाद हूँ। मेरा नाम गंगासहाय है। अब भी तुमने मुझे पहचाना या नहीं? मेरी धर्मपत्नी तुम्हारी पुत्री थी। मेरे निधन के बाद उसकी भी मृत्यु तुम्हारे ही घर में हो गई। वह मेरी सब धन-दौलत लेकर तुम्हारे ही घर रह गई थी। जब मेरी पत्नी का स्वर्गवास हो गया तब तुमने मेरी सारी धन-दौलत हजम कर ली और मेरे निमित्त कुछ भी पुण्य कार्य नहीं किया। इस प्रकार तुमने सब प्रकार से मेरा अकाज किया है और उलटे तुम मुझे ही दोषी ठहरा रहे हो और पूछ रहे हो कि मैं क्यों तुमलोगों को तंग कर रहा हूँ। तुमने भल-मानसाहत भी खूब निभाई। क्या तुम्हें यही उचित था कि मेरा धन हड़प जाते?

प्रेत की बात सुनकर रामकृष्ण काँपने लगे। वे मन-ही-मन सहम गए क्योंकि यह बात झूठ नहीं थी। वे धैर्य धारण कर बोले कि आपने बिलकुल सच्ची बात कही है। यथार्थ में मैं अपराधी हूँ और आपकी सारी सम्पत्ति को मैं हजम कर गया हूँ। किन्तु अब तो मुझसे लोभवश भूल हो गई। आप मेरे सम्बन्धी हैं। कृपया मेरे अपराध को क्षमा करें और ऐसा उपाय बताएँ जिसमें आपका और मेरा दोनों का कल्याण हो।

जब रामकृष्ण ने अपना दोष स्वीकार कर लिया तब प्रेत के हृदय में दया का संचार हो गया। उसने सौम्य रूप धारण

ा कि यदि तुम अपना और दोनों का वास्तव में
ाहते हो तो जानकीघाट पर एक सिद्ध महापुरुष
ते हैं जिनका शुभ नाम श्रीरामवल्लभाशरणजी हैं। वे
भगवान राम के ही अवतार हैं। उनसे तुम भी
ति परिचित हो। उनकी शरण में जाकर तुम सच्ची-
ात निवेदन करो। वे तत्काल हमारी और तुम्हारी
की विपत्ति दूर कर देंगे, इसमें जरा-भी संशय
।

सुनकर रामकृष्ण शीघ्रतापूर्वक श्रीगुरुदेव की शरण
। वहाँ जाकर उनके श्रीचरणों में नतमस्तक ह
सत्य-सत्य सब हाल सुना दिया। तब श्रीमहाराजजा
कि तुम घर पर जाकर भगवन्नाम का नवाह विधि-
रवाओ। प्रभु तुम्हारा कष्ट अवश्य हर लेंगे, तुम
यह दृढ़ विश्वास कर लो। ऐसा कहकर नवाह की
ी गुरुदेव ने उसे समझाकर बता दी। वैश्य हर्षित
र गये और ब्राह्मणों द्वारा उन्होंने उत्साह सहित
म का नवाह कीर्त्तन सम्पन्न कराया। नवाह पूर्ण होने
ोंने कलश का जल श्रीमहाराजजी को जाकर दिया।
व ने वह जल उनके पुत्र अयोध्या को पान करने को
जल के पान के बाद वह पूर्णरूपेण निरोग हो गया
सके बाद वह प्रेत कभी दीखा ही नहीं। वह दीखता



प्रातःस्मरणीय श्रीपूज्यचरण अनन्तश्री विभूषित

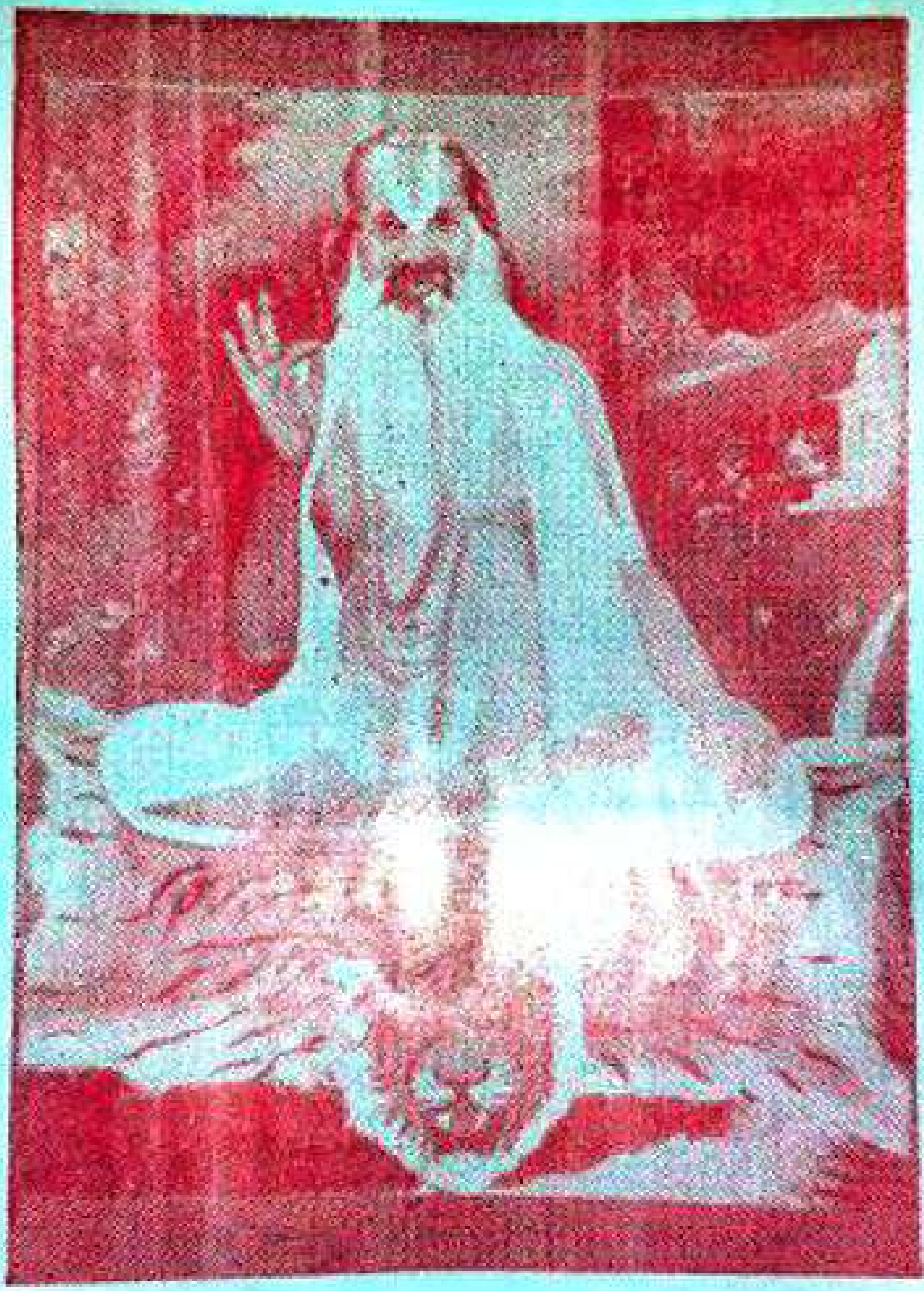
पं० श्रीरामपदारथदासजी महाराज 'वेदान्ती'

भी कैसे क्योंकि श्रीगुरुदेव की कृपा से उसने सद्गति प्राप्त कर ली थी।

प्रेतबाधा तो दूर हुई ही, अपने तनय अयोध्या को बिलकुल स्वस्थ देखकर रामकृष्ण के मन में अपार आनन्द हुआ। नवाह के द्वारा वैश्य के संकट को टलते देखकर बहुत-से अर्थार्थी भी भगवन्नाम का नवाह यज्ञ करने लगे। जिसने भी नामयज्ञ किया, उसी का मनोरथ सफल हो गया। इस प्रकार अर्थार्थियों में नामयज्ञ का पूर्ण प्रचार हो गया। करुणामय गुरुदेव ने निष्काम नामयज्ञ का तो प्रचलन किया ही, सकाम नामयज्ञ का भी उन्होंने सम्यक् रूप से प्रचार किया।

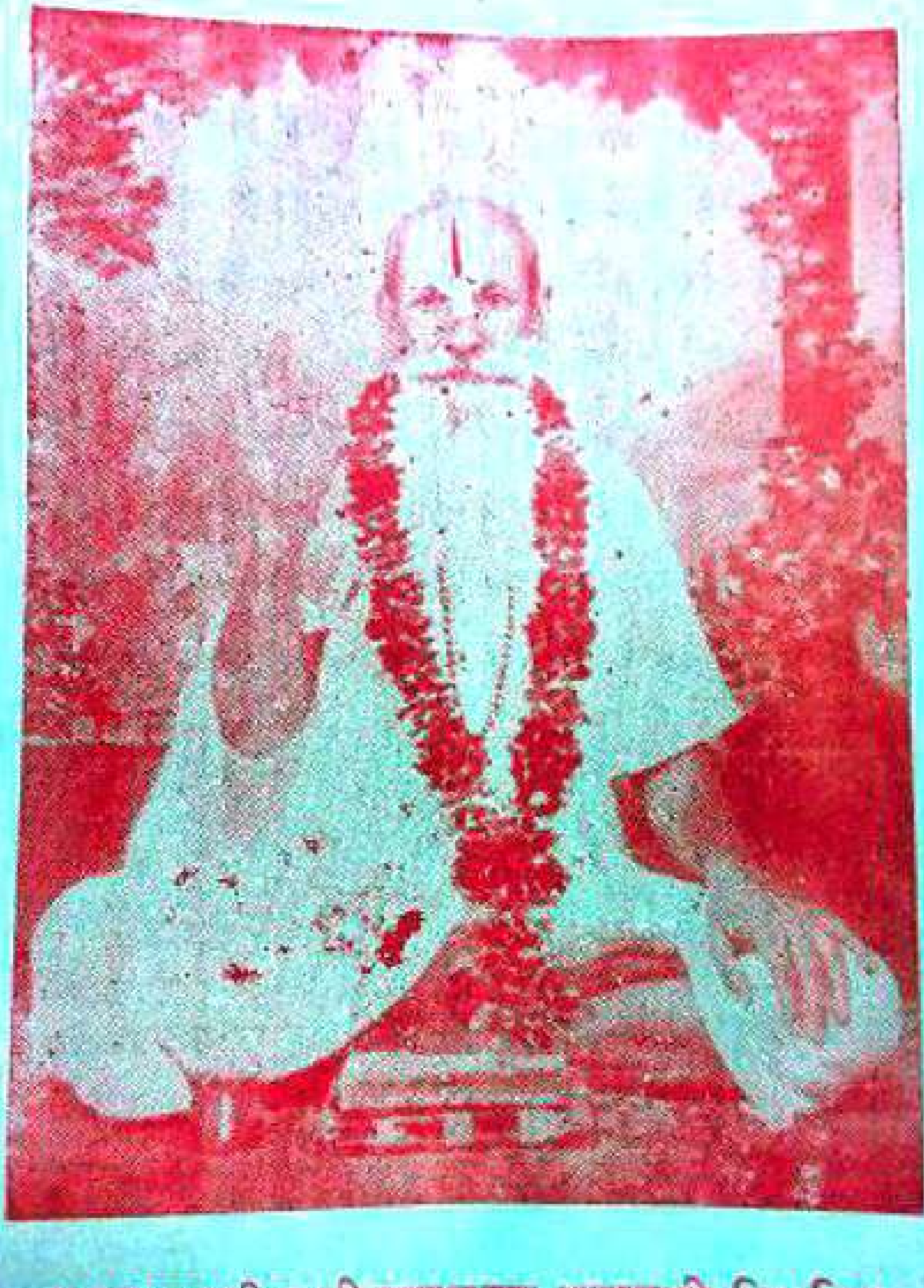
(२)

अमावा नरेश के एक कम्पाउन्डर थे जिनके भाई का नाम कारू बाबू था। उनकी धर्मपत्नी को प्रतिदिन एक प्रेत आकर सताने लगा। इतना ही नहीं, उसे वह वह कोई सन्तति भी नहीं होने देता था और नाना प्रकार से कष्ट देता था। सभी परिवारवाले प्रेतबाधा को दूर करने के लिए विविध प्रकार के यत्न किए किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ।



स्वनामधन्य श्रीपूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित

पं० श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराज



प्रातःस्मरणीय श्रीपूज्यचरण अनन्तश्री विभूषित

पं० श्रीरामपदारथदासजी महाराज 'वेदान्ती'

अन्त में हार कर सभी लोग उस स्त्री को श्रीगुरुदेव की शरण में ले गए। उन्होंने श्रीमहाराजजी से अपनी व्यथा कह सुनाई। दयालु महात्मा ने अपना करकमल उसके मस्तक पर रख दिया। फिर क्या था? महान् परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ। वह पूर्ण स्वस्थ हो गई। प्रेत उसे छोड़ कर जो गया सो फिर उसके पास कभी नहीं फटका। जब श्रीगुरुदेव का अमोघ आशीर्वाद प्राप्त कर वह घर आई तो उसे सन्तति भी होने लगी और सारी विपत्तियाँ सदा के लिए दूर हो गईं। घर तथा परिवार में आनन्द-मंगल छा गया। श्रीमहाराजजी का ऐसा अनोखा प्रभाव देखकर उसके सभी सम्बन्धियों की श्रीगुरुदेव पर अपार श्रद्धा हो गई।

—:o:—

मजदूरनी को प्राणदान

श्रीअवध में श्रीगुरुदेव के स्थान के पास ही इचाक का मंदिर है। वहाँ मंदिर में मरम्मत का कार्य चल रहा था। इसी सिलसिले में एक मजदूरिन बुर्ज पर चढ़ गई और कलश साफ करने लगी। इसी बीच उसे एक झटका लगा और वह झोंका खाकर चार खंड से सड़क पर गिर पड़ी। इतने ऊँचे से गिरने के कारण वह मूर्छित हो गई और ऐसा लगा जैसे उसकी मृत्यु हो गई हो क्योंकि उसकी साँस रुक गई थी।

सभी लोग दौड़ कर श्रीगुरुदेव के समीप गए और उनसे प्रार्थना की कि ऐसी कृपा करें कि मजदूरनी के प्राण बच जायँ। करुणासिंधु को उनकी विनती सुनकर दया आ गई। उन्होंने कुछ देर तक मन में विचार किया। उसके बाद उन्होंने आदेश दिया कि मजदूरनी को ले जाकर लिटा दो। श्रीराघव कृपा की मूर्ति हैं, वे अवश्य उसकी रक्षा करेंगे क्योंकि वे गरीब निवाज हैं। उसके स्वजनों ने श्रीगुरुदेव की आज्ञा का अक्षरश: पालन किया। उस मजदूरनी को उसके घर टाँग कर ले गए और उसे सुला दिया गया। सभी लोगों को यह देखकर महान् आश्चर्य हुआ जब वह प्रात:काल उठ कर नित्य-कृत्य करने लगी। इतना ही नहीं वह नित्य की भाँति दूसरे ही दिन अपने काम में भी शरीक हो गई।

महामारी निवारण

एक बार श्रीअवध में महामारी फैलनेवाली थी। यह एक छुतही बीमारी है जिसमें एक ही समय यह रोग बहुतों को हो जाता है और अधिकाँश अपने प्राणों से हाथ धो बैठते हैं। करुणा वरुणालय श्रीगुरुदेव सर्वज्ञ थे। अतः उन्हें यह बात विदित हो गई और उन्होंने रोग को स्वयं भोगकर सम्पूर्ण अवधवासियों को इस महान् संकट से मुक्त कर दिया। श्रीमहाराजजी का यह उदार चरित्र इस प्रकार है।

स्थान के संतों से एक दिन श्रीगुरुदेव ने कहा कि ऐसा प्रतीत होता है जैसे मुझे कोई महान् रोग होगा। संतों ने कहा कि सरकार के लिए यह कौन-सी बड़ी बात है। कृपया इसे टाल दें जिसमें सदा हमलोग श्रीसरकार को स्वस्थ देख सकें। श्रीगुरुदेव ने कहा कि प्रारब्ध का भोग मनुष्य को अवश्य ही भोगना पड़ता है। उसे कोई भी टाल नहीं सकता। कितने ही सज्जन स्वार्थवश कर्मभोग से मुक्त होने के लिए प्रभु से प्रार्थना कर उनको संकोच में डाल देते हैं। यह कदापि उचित नहीं है। ऐसे लोग अत्यन्त मूर्ख हैं।

प्रभु संपूर्ण भूतप्राणियों के सुहृद हैं, अतः वे वही करते हैं जिसमें प्राणिमात्र का कल्याण हो। यही कारण है कि

भगवान् के विधान को अहितकर समझकर सच्चे संत उसे कभी टालना नहीं चाहते। संत वही है जो दुःख तया सुख दोनों को ही समान भाव से सम गणता है और इन दोनों को ही मंगलकारी समझकर प्रसन्न रहता है। श्रीगुरुदेव का यह महान् उपदेश सुनकर सभी साधु चुप हो गए।

इसके कुछ ही दिनों के बाद श्रीगुरुदेव अचानक बीमार पड़ गए। दो पीडाकर गिल्टियाँ निकल आईं—एक जाँघ के मूल भाग में और दूसरी वक्षस्थल पर। साथ-ही-साथ भयानक ज्वर से भी वे आक्रांत हो गए। एक डाक्टर ने आकर इन गिल्टियों का ऑपरेशन कर दिया किन्तु व्याधि मिटी नहीं बल्कि और दूनी पीड़ा हो गई।

श्रीसरकार की अस्वस्थता का समाचार सुनकर शीघ्र ही अमावाँ नरेश अपने कम्पाउन्डर को साथ लेकर आए। उन्होंने इलाज के लिए बड़े-बड़े डाक्टरों को बुलवाया। भाँति-भाँति के उपचार करवाए और जैसी चाहिए वैसी अपने श्रीगुरुदेव की सेवा तन-मन-धन से की किन्तु कोई विशेष लाभ दृष्टि-गोचर नहीं हुआ। तब श्रीमहाराजजी ने आज्ञा दी कि हे भुपाल! आप जाकर अपना राजकाज संभालें। राजा ने अपने कम्पाउंडर को श्रीगुरुदेव की सेवा में नियुक्त कर दिया और स्वयं हर पाँच-सात दिन के बाद आ-आकर श्रीसरकार की संभाल करने लगे।

राजा के कम्पाउंडर श्रीगुरुदेव की सेवा रात-दिन सजग होकर करने लगे। यद्यपि नामी डाक्टर इलाज करते थे किन्तु न घाव ही भरते थे और न ज्वर ही कम होता था। श्रीअवध के सभी संत महंत दुःखित होकर श्रीगुरुदेव को देखने आते और उनकी दशा देखकर मन में अनेक प्रकार के संशय करते।

उन दिनों श्रीअवध में श्रीहनुमन्निवास के अधिपति एक सिद्ध संत थे जिनका शुभ नाम श्रीगोमतीदासजी था। उनकी बड़ी ख्याति थी। सभी संतों को विदित था कि उन्हें श्रीहनुमानजी के साक्षात्कार होते हैं। एक दिन डिप्टी साहब श्रीरूपकलाजी उनके पास गए। जैसे ही दण्डवत करके बैठे तैसे ही श्रीगोमतीदासजू ने पूछा कि श्रीपंडितजी के शरीर का क्या हाल है। डिप्टी साहब ने कहा कि घावों में और ज्वर में कुछ भी आराम नहीं है। कल मैं उन्हें देखने गया था और आज भी वहीं जा रहा हूँ। तब श्रीगोमतीदासजी ने कहा कि मैं भी आपके साथ ही उन्हें देखने चलूँगा। उनलोगों ने आकर श्रीगुरुदेव को प्रणाम किया तथा श्रीमहाराजजी भी उन्हें देखकर प्रमुदित हो गए और उनलोगों का बहुत ही सम्मान किया।

श्रीगोमतीदासजी ने कहा, हे श्रीपंडितजी महाराज! अवध देह है और सभी संत इसके अंग-प्रत्यंग हैं। आप ही

इसके प्राण हैं तथा संकट निवारण के कारण आप ही इसके त्राण हैं। सभी संतजन आपकी यह रूपलीला देखकर चिन्तित हैं। कृपया इस लीला को समाप्त कर सभी संतों को आनन्द प्रदान करें। सभी साधु आपके दर्शन से ही सनाथ हैं। वे अब मन में संशय करने लगे हैं कि कहीं ऐसा न हो कि हम सभी अनाथ हो जायँ।

तब श्रीगुरुदेव ने श्रीगोमतीदासजू से कहा कि हे महाराज ! आप अन्तर्यामी हैं। आपसे क्या छिपा है। यह शरीर कर्मों के भोगबश अवश्य दुःख पाएगा किन्तु मेरी देह अभी नहीं छूटेगी। दुःखों को दूर करनेवाली, रामभक्तों की माता श्रीसरयूजी हमारी अवश्य सुधि लेंगी और सारी बीमारी मिट जाएगी। श्रीमुख के ये वचन सुनकर श्रीगोमती-दासजी हर्षित हो गए और अनुमति लेकर अपने स्थान पर आए।

श्रीरूपकलाजी उनके साथ ही आए। श्रीगुरुदेव की दशा देखकर वे मन में विविध भाँति के संशय करने लगे। एकान्त पाकर उन्होंने श्रीगोमतीदासजी से कहा कि यह कैसा रोग श्रीगुरुदेव को हो गया है जो उपचार करने पर भी छूटता नहीं। यद्यपि उन्होंने आज कहा कि अभी शरीर नहीं छूटेगा, तथापि मेरे मन में बहुत-ही घबराहट सी हो रही है। आज आपने भी जाकर उनके लक्षण भलीभाँति देखे। कृपया अपना अनुगामी समझकर मुझे बताएँ कि अब क्या होगा ?

श्रीगोमतीदासजी ने डिप्टी साहब से कहा कि श्रीयुक्त पंडितजी महाराज को आप साधारण नर नहीं समझिए। वे साक्षात् राम के अवतार हैं। वे संतों की रक्षा करने के लिए तथा रामभक्ति का प्रचार करने के लिए ही जगत् में प्रकट हुए हैं। इस समय अयोध्या में महामारी आई थी किन्तु श्रीपंडितजी महाराज ने उस रोग को अपने शरीर द्वारा भोग कर सभी संतों को सुखी कर दिया और स्वयं कुछ काल के लिए बीमार हो गए हैं। आप हृदय में धैर्य धारण करें। वे अब शीघ्र ही स्वस्थ हो जायँगे। संतों के जैसे लक्षण होते हैं, वैसे ही इस समय ये आचरण कर रहे हैं। संत सदा ही दूसरों के सुख से सुखी होते हैं और दूसरों का दुःख देखकर दुःखी हो जाते हैं। विश्व अन्धकूप में जो जीव पड़े हैं, उनका ये बरबस उद्धार करते हैं। जो श्रीराम के अवतार हैं, उन्हें व्याधि कैसे हो सकती है? वे तो सबके भवरोग को हर लेते हैं। हे डिप्टी साहब! आप सच मानिए, यह रूपलीला उनकी एक नरलीला है। यद्यपि आप श्रीपंडितजी महाराज के सच्चे स्वरूप को भली-भाँति जानते हैं, तथापि आप स्नेहवश उन्हें रुग्ण देखकर विह्वल हो रहे हैं। सच्चे प्रेमियों की जगत् में यही रीति है कि वे अपने मन में सदा डरते रहते हैं कि कहीं उनके प्रिय का कोई अनिष्ट न हो जाय। महापुरुष के ये सांत्वनापूर्ण वचन सुनकर डिप्टी साहब हर्षित होकर अपने स्थान को चले गए।

अमावाँ नरेश द्वारा नियुक्त कम्पाउंडर श्रीगुरुदेव की निशिवासर तत्पर होकर परिचर्या करते। स्थान के सभी संत मन-कर्म-वचन से अपने प्राण-धन श्रीगुरुदेव की सेवा करते। समय-समय पर अमावाँ नरेश भी आकर कुशल चिकित्सकों द्वारा श्रीमहाराजजी का विविध भाँति से उपचार करवाते किन्तु न घाव ही भरते और न ज्वर ही उतरता। यह देखकर सभी सोच में पड़ गए।

एक दिन श्रीगुरुदेव पौढ़े-पौढ़े ही नेत्र बंद कर ध्यान कर रहे थे और पुनः-पुनः "सरयू-सरयू" उच्चारण कर रहे थे तथा उनकी आँखों से प्रेमाश्रु बह रहे थे। बीच-बीच में वे चौंक कर आँखें खोल देते और इधर-उधर देखकर फिर आँखें मूंद लेते। जो लोग उनके पास थे वे सभी डर गए और सभी ने यही निश्चय किया कि बात-विकार बढ़ गया है।

इतने में श्रीगुरुदेव ने नेत्रों को खोल कर कम्पाउंडर से कहा कि खिड़की खोल कर देखिये तो यह कैसा शब्द सुनाई पड़ रहा है। यह सुनकर कम्पाउंडर ने कहा कि यह किसी लौरी या मोटर का शब्द होगा। तब कौतुककारी श्रीगुरुदेव ने कहा कि यह किसी मोटर या लौरी का शब्द नहीं है, सभी संतापों का नाश करनेवाली श्रीसरयू माता पधार रही हैं। यह सुनकर कम्पाउंडर उठे और खिड़की में से बाहर झाँक कर देखे तो पाया कि श्रीसरयूजी बढ़कर स्थान तक चली आई हैं

और कलकल-निनाद करती हुई बह रही हैं। तब उन्होंने श्रीमहाराजजी के श्रीचरणों में मस्तक नवाकर कहा कि सरकार ठीक ही कहा जाता है, श्रीसरयूजी बढ़ कर स्थान तक आ गई हैं।

तब श्रीगुरुदेव सरक कर खिड़की के पास गए और झुक कर उन्होंने जब देखा तो पाया कि श्रीसरयूजी का निर्मल जल ठीक स्थान के पास ही बह रहा है। उन्होंने तत्काल ही कोठारी को बुला कर यह आदेश दिया कि श्रीसरयूजी कृपा करके पधारी हैं। आप तस्मई बनवाइए और इन्हें भोग लगाकर संतों को भी पवा कर तृप्त कर दीजिए। कम्पाउंडर से भी उन्होंने कहा कि शीघ्र सरयू-जल मँगवाएँ जिससे मैं स्नान-पान करूँ और तब आप दवा लगाएँ।

यह सुनकर कम्पाउंडर ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि सरकार के घाव भी बड़े हैं और ज्वर भी चढ़ रहा है। इस समय स्नान करना कदापि उचित नहीं प्रतीत होता। इस पर श्रीगुरुदेव ने हँस कर कहा कि इस अवसर पर पथ्यापथ्य का कुछ भी विचार नहीं करना है क्योंकि श्री सरयूजी सकल मंगलदायक हैं, अतः शीघ्र सरयू-सलिल मँगवा लीजिए। सरयू-जल मंगवा कर श्रीमहाराजजी ने सर्वप्रथम आचमन किया। फिर शीघ्र घावों की पट्टियाँ खुलवाकर, घावों को अच्छी तरह धुलवा लिया। तब सरयूजी के जल से उन्होंने खूब अच्छी

तरह स्नान कर, घावों पर दवा लगवा ली। जब विस्तर पर लेटे तो श्रीसरयूजी की कृपा से सब व्याधि मिट गई थी।

श्रीगुरुदेव ने कम्पाउडर को आज्ञा दी कि जरा थर्मामीटर लगा कर ज्वर की जाँच तो कीजिए। आप घबराएँ नहीं, जरा देखिए तो कि ज्वर घटा है अथवा बढ़ा है। जाँच करके कम्पाउंडर विस्मित और हर्षित हो गए। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा कि सरकार ज्वर अब मिट गया, केवल नाममात्र को ही है। पट्टियाँ बदलते समय घावों को देखकर उन्होंने कहा कि इनके रंग भी आज ठीक हैं, ये भी अब भरने लगे हैं।

श्रीमहाराजजी ने कहा दुःख-दलनि श्रीसरयू अम्बा की मुझ पर असीम कृपा हुई है। आज उन्हीं की कृपा से ज्वर भी उतर गया और घाव भी भरने लगे हैं। आपका भी परिश्रम सफल हो गया। अब मेरी सारी व्याधि मिट गई। श्रीमुख के ये वचन सुनकर कम्पाउंडर हर्षित होकर उनके चरणों में नतमस्तक हो गए। उन्होंने प्रार्थना की मुझे कोई ऐसा अनुपम वर दें जो शीघ्र ही सिद्ध हो जाय।

पुनः कम्पाउंडर ने हाथों को जोड़ कर कहा कि सरकार, पथ्य का समय हो गया है, दूध और फल तैयार हैं। कृपया इन्हें ग्रहण करें। यह सुनकर श्रीगुरुदेव ने कहा कि बात तो आपने ठीक ही कही, किन्तु हमारी इच्छा यही है कि चूँकि श्रीसरयूजी आज पधारी हैं, इसलिए उन्हें पहले तस्मई पवाया जाय। फिर एक साधु से उन्होंने कहा कि जाकर पुजारी से कह दो कि श्रीसरयूजी को खीर भोग निवेदन करें। पुजारी ने तुरत ही तस्मई श्रीसरयूजी को निवेदन किया और

प्रसाद लाकर श्रीमहाराजजी को अर्पित किया। उस दिन श्रीगुरुदेव ने श्रीसरयूजी के प्रसाद का ही पथ्य लिया। फिर तस्मई प्रसाद ही सभी साधुओं को पवाया गया। सभी तृप्त होकर आनन्द से जय-जयकार करते हुए अपने-अपने स्थान को चले गए।

श्रीगुरुदेव की भयंकर व्याधि तब से प्रतिदिन घटने लगी। अमावाँ नरेश श्रीअवध बराबर आते-जाते रहते थे और भक्तिपूर्वक सरकार का उपचार कराते रहते थे। जैसे-जैसे श्रीगुरुदेव स्वस्थ होते गए, सबके हृदय हर्ष से प्रफुल्लित होते गए। थोड़े ही दिनों में घाव बिलकुल भर गए और ज्वर भी जाता रहा। जो कुछ दुर्बलता थी, वह कुछ ही दिनों में दूर हो गई। अमावाँ नरेश भी श्रीसरकार को पूर्ण स्वस्थ देखकर प्रसन्न हो गए और अपने कम्पाउंडर के साथ अपना राज-पाट देखने चले गए।

श्रीगुरुदेव को विरुज देखकर सभी सन्तों का हृदय आनन्द से खिल उठा। जितने सज्जनबृन्द थे, वे श्रीसरकार को रोगमुक्त देखकर वैसे ही हर्षित हो गए, जैसे राहु से मुक्त चन्द्रमा को देखकर चकोरगण हो जाते हैं। इसके बाद श्रीगुरुदेव पूर्ववत् कथा कहने लगे, उनके उपदेशामृत का पान कर सभी संत पुनः प्रमुदित हो उठे।

—:o:—

बगसरा कुमार को शरण प्रदान

काठियावाड़ में बगसरा नामक एक रियासत है। वहाँ के राजा का शुभ नाम वाजसुरवाला था। उनके ज्येष्ठ पुत्र गुणों के निधान थे और उनका नाम अमरावाला था। वे बड़े ही संस्कारी पुरुष थे। उनका भगवान् श्रीरामचन्द्रजी में बचपन से ही अनुराग था। ज्यों-ज्यों उनकी अवस्था बढ़ी, त्यों-त्यों उनकी भजन करने की लालसा भी बढ़ती गई। इसी बीच बगसरा में माधव तीर्थ नामक विद्वान संन्यासी पधारे। उनसे राजकुमार ने राम मंत्र की दीक्षा ली। उसके बाद नित्य नियम से राममंत्र का जप करने लगे।

राजकुमार तो सगुण भगवान् के उपासक थे किन्तु जिनसे उन्होंने दीक्षा ली वे निर्गुणवादी थे। इस कारण उन्हें पूर्ण शान्ति नहीं मिली और उनका मन वैष्णव दीक्षा लेने के लिए अकुलाने लगा। इसके कुछ ही दिनों के बाद बगसरा में एक श्रीरघुनाथ स्वामी नामक आचार्य आए। उनसे भी प्रार्थना करके राजकुमार ने शंखचक्र की मुद्रा लेकर श्रीमंत्रराज की दीक्षा ली। इस प्रकार वैष्णव बनकर श्रीरघुपति की आराधना करने लगे। साथ-ही-साथ भक्ति के ग्रंथों का भी

स्वाध्याय करने लगे। स्वाध्याय से उन्हें यह ज्ञान हुआ कि भगवान् राम की प्राप्ति के लिए रामानन्दी वैष्णव बनना आवश्यक है। ऐसा विचार कर वे यत्र-तत्र श्रीरामानन्दीय महात्मा का अन्वेषण करने लगे। पुष्कर, ब्रज, काशी, प्रयाग आदि क्षेत्रों में ढूँढ़ते हुए, अन्त में सद्‌गुरु की खोज करते-करते वे श्रीअवध पहुँचे। राम भक्ति से ओत-प्रोत श्रीअयोध्यापुरी को देखकर राजकुमार उसी प्रकार सुखी हुए जैसे कड़ी धूप से व्याकुल प्राणी वृक्ष की छाया पाकर।

श्रीअवध में वे श्रृंगार भवन में ठहरे। जैसे भौंरा कमल को खोजता फिरता है वैसे ही वे सद्‌गुरु की खोज करने लगे। सौभाग्यवश उन्हीं दिनों तोताद्रि स्वामी अयोध्या पधारे। उनके सम्मान में कनक भवन के चौक में एक विशाल सभा आयोजित की गई। प्रायः अयोध्या के सभी गण्यमान्य संत-महंत उसमें पधारे। भक्तों के ताप को हरनेवाले श्री महाराजजी भी उस सभा में उपस्थित हुए। उन्होंने शुभ मंगलाचरण किया और अत्यन्त महत्वपूर्ण भाषण किया। श्रीगुरुदेव के परम दिव्य रूप के दर्शन करके तथा महा सारगर्भित भाषण सुनकर राजकुमार का मन उनकी ओर वैसे ही आकर्षित हो गया जैसे लोहा चुम्बक की ओर।

धूमधाम से सभा सम्पन्न करके सभी संत श्रीसियराम का स्मरण करते हुए अपने-अपने स्थान को चले गए। किन्तु

राजकुमार के हृदय में श्रीमहाराजजी के प्रति अपार श्रद्धा जाग्रत हो गई। उन्होंने एक प्रकार से अपने को उनके चरणों में समर्पित कर दिया। सभा को देखकर यद्यपि वे शृंगार भवन में जाकर बिस्तर पर सो गए तथापि उनका मन निरन्तर सभा में श्रीमहाराजजू को मंगलाचरण करते ही देखता रहा।

प्रात: काल उठकर राजकुमार ने मधुसूदन नामक विद्यार्थी से पूछा कि जिन्होंने कनक भवन की सभा में शुभ मंगलाचरण किया था, उनका शुभ नाम क्या है और वे किस स्थान पर निवास करते हैं। उस विद्यार्थी ने बताया कि उनका शुभ नाम पण्डित श्रीरामवल्लाभाशरणजू है और वे श्रीजानकीघाट में रहते हैं। यह सुनकर राजकुमार उस विद्यार्थी के साथ श्रीसरकार के पास गए और उनके श्रीचरणों में नतमस्तक होकर अत्यन्त कातर स्वर में प्रार्थना करने लगे कि हे नाथ ! हमारी रक्षा करें, हमारी रक्षा करें, मैं आपकी शरण में आया हूँ। मैं दीन, हीन और असहाय हूँ। श्रीसरकार अनाथों के नाथ हैं, अत: कृपया अपना शिष्य बनाकर मुझे सनाथ करें। राजकुमार की भावभक्ति और शरणागति की सच्ची लालसा देखकर श्रीसरकार ने धनुष-बाण की मुद्रा देकर तथा श्रीमंत्र-राज की दीक्षा देकर उन्हें अपनी शरण में ले लिया। साथ ही साथ उनका शुभ नाम रघुवीर दास रक्ख दिया।

रघुवीर दास कुछ दिनों तक श्रीगुरुदेव की सेवा में रहकर उनके उपदेशामृत का पान करते रहे। सच्चे गुरु के मिलने

से उन्हें अपार आनन्द हुआ और उन्होंने मन में निश्चय कर लिया कि मुझे मनुष्य-जन्म लेने का यथार्थ फल मिल गया। श्रीसरकार के सत्सङ्ग से श्रीसीतारामजी में, ब्राह्मण तथा वैष्णव-सेवा में राजकुमार का प्रेम भाव अत्यन्त ही बढ़ गया। इस प्रकार श्रीसरयूजी में स्नान कर तथा श्रीअवध के प्रसिद्ध स्थानों के दर्शन कर रघुबीर दास श्रीसरकार की आज्ञा पाकर बगसरा प्रमुदित होकर लौट गए।

घर जाकर राजकुमार श्रीसीताराजी के भजन में तल्लीन हो गए। श्रीगुरुदेव की कृपा से नित्य नवीन आनन्द का अनुभव करने लगे। उनकी संगति से कुटुम्ब के सभी सदस्य सियराम प्रेमी बन गए। सब के मन में यही लालसा जाग्रत हो गई कि कैसे हम सभी श्रीगुरुदेव की शरण ग्रहण करें। फलतः रघुवीरदासजी की माता, पिता तथा छोटे भाई सभी क्रम-क्रम से श्रीअवध श्रीसरकार के पास गए और श्रीमंत्रराज की दीक्षा ग्रहण कर कृतकृत्य हो गए। श्रीरघुवीर दासजी के सत्सङ्ग का रंग सभी पर चढ़ गया, नरेश के महल में भक्ति की गंगा बहने लगी।

पिता के आदेश से सब राजकाज करते हुए भी राजकुमार निशिवासर सिय-रघुनन्दन के भजन में मस्त रहते। वे समय-समय पर श्रीअवध जाकर श्रीगुरुदेव के दर्शन करते और भजन का मर्म समझ कर इस प्रकार हर्षित होकर अपने घर लौटते जैसे कोई वणिक परदेश से कमाई कर विपुल धन लेकर वापस आता है।

—: ★ :—

श्रीद्वारिका यात्रा

एक बार बगसरा राजकुमार रघुवीरदास श्रीगुरुदेव के पास श्रीअवध पधारे। उन्होंने श्रीसरकार के दर्शन कर तथा सत्संग कर बहुत ही सुख पाया। उन्हीं दिनों प्रयागराज में संकीर्तन सम्मेलन आयोजित था। श्रीमहाराजजी ने निश्चय किया कि तीर्थराज में सम्मेलन सम्पन्न करके द्वारिका जाऊँगा और वहाँ से भ्रमण कर श्रीअवध पधारूँगा। यह सुनकर राजकुमार बहुत ही हर्षित हुए क्योंकि उन्हें यह विश्वास था कि जब श्रीसरकार द्वारावती जाएँगे तो अवश्य ही बगसरा में भी पदार्पण करेंगे।

जब श्रीगुरुदेव संतों के सहित प्रयागराज को प्रस्थित हुए तब रघुवीरदास भी उनके साथ हो गए। उन्होंने सुअवसर देखकर श्रीसरकार से प्रार्थना की कि जब द्वारावती की यात्रा की हो जा रही है तब कृपा कर बगसरा पधार कर मेरी भी कुटिया पवित्र करें। करुणानिधान श्रीगुरुदेव की स्वीकृति पाकर वे आनन्दमग्न हो गए। श्रीगुरुदेव को प्रयाग सम्मेलन में पहुँचाकर तथा उनकी अनुमति लेकर वे स्वागतार्थ बगसरा चले आए।

वे अनेक प्रकार के मनोरथ करते हुए अपने घर आए और सभी परिवारवालों को यह शुभ संवाद कह सुनाया। श्रीगुरुदेव

के आगमन का समाचार सुनकर सभी लोग वैसे ही हर्षित हो गए जैसे चातक मेघगर्जन को सुनकर। उनकी माता ने कहा कि हे वत्स! मैं बलिहारी जाती हूँ, तुम्हारी भक्ति का ही प्रभाव है कि श्रीसद्‌गुरु हमारे यहाँ पधार रहे हैं। उन्होंने श्रीलालसाहब के ठहरने तथा संतों के निवास, भोजन, मज्जन और रसोई का स्थान तत्काल निश्चित कर दिया। फिर वे पूछीं कि हनुमानजी के पुजारी अयोध्यादास भी श्रीसरकार के साथ आवेंगे? रघुवीरदास ने उत्तर दिया कि द्वारिका यात्रा करनेवाले साधुओं में अयोध्यादास का नाम नहीं है, यद्यपि वे श्रीमहाराजजी के साथ प्रयागराज गए हैं। उनको माता ने कहा कि तुम्हें उचित तो यह था कि उन्हें भी प्रार्थना कर अपने घर इस अवसर पर बुलाते जिससे वे यहाँ आकर रामधुन कर सभी को महान आनन्द प्रदान करते।

जब श्रीगुरुदेव तीर्थराज प्रयाग में पहुँचे तो सभी प्रेमियों ने अत्यन्त उत्साह के साथ उनका अपूर्व स्वागत किया। श्रीसरकार भी संकीर्तन सम्मेलन के सभापतित्व का पद ग्रहण कर, वहाँ के सभी कार्य बहुत ही सुन्दर ढंग से करने लगे। दो दिनों तक वहाँ का कार्य सम्यक् रूप से सम्पादन कर, जब तीसरे दिन श्रीमहाराजजी सम्मेलन में जाने लगे तब उन्होंने अयोध्यादास से कहा कि तुम भी हमारे साथ द्वारिका चलने की तैयारी करो क्योंकि रघुवीरदासजू की माता तुम्हें बहुत ही

याद कर रही हैं। सुनते ही अयोध्यादास ने तत्काल आज्ञा शिरोधार्य किया।

पाँच दिनों तक सम्मेलन का अधिवेशन बड़े धूमधाम से होता रहा। श्रीसरकार के सारगर्भित उपदेश सुनकर सभी प्रेमी मुग्ध हो गए। कितने ही श्रीमंत्रराज की दीक्षा लेकर वैष्णव बन गए। विविध मंडलियों ने भी सुललित संकीर्तन किया तथा अन्य महात्माओं ने ऐसा सुन्दर प्रवचन किया कि जिसे सुनकर श्रोतागण चित्र में लिखे-से हो जाते। सभी प्रेमी श्रीगुरुदेव का गुण गाते हुए अपने-अपने घर लौटे। सम्मेलन की समाप्ति पर जब श्रीसरकार पश्चिम यात्रा के लिए तैयार हुए तब संचालकों ने उन्हें बहुत ही विनीत भाव से दण्डवत् किया तथा श्रद्धासहित धन्यवाद ज्ञापन किया। करुणानिधान श्रीगुरुदेव ने प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद प्रदान किया और सबका सम्मान कर वहाँ से विदा हुए।

सम्मेलन को पूर्णरूपेण सफल कर श्रीमहाराजजी रेल द्वारा पश्चिम की यात्रा करने लगे। जहाँ भी प्रातः होता, वहाँ वे सुपास देखकर उतर पड़ते तथा पूजन-भोजन के पश्चात् आगे के लिए प्रयाण करते। जहाँ-जहाँ उतरते, वहाँ-वहाँ नगवासी उनके दर्शन कर अपने नेत्रों को सफल कर लेते और दिव्य तेज तथा उपदेशामृत सुनकर अनेक मंत्रदीक्षा लेकर तत्काल वैष्णव बन जाते।

जब श्रीसरकार रेल द्वारा यात्रा करते-करते आबू के समीप पहुँचे, तब उन्हें गाड़ी में ही नींद-सी आ गई। उन्होंने स्वप्न में एक साधु की जमात देखी जिसके बीच में एक जटाधारी मध्यवयस्क अपार-तेजयुक्त उग्र महात्मा विराज रहे थे। उनकी गोद में सूर्य की कान्ति को भी हरनेवाले एक अनुपम रूपवान् दिव्य बालक दीख पड़े जिनके सिर पर भी विद्युत् की द्युति के सदृश चमकीली जटा थी। उनके दर्शन कर श्रीसरकार को अपार आनन्द हुआ और वे विचार करने लगे कि इस जमात के संचालक यद्यपि उग्र तपोधन महात्मा हैं तथापि ये इतने छोटे बालक को अपनी गोद में क्यों लिए हैं ?

इसी बीच गुरुदेव से एक साधु ने प्रश्न किया कि श्रीमान् ने शिशु सहित इन मुनि को पहचाना या नहीं। ये साक्षात् कर्दम ऋषि हैं जो आदिदेव, दीनों पर दया करनेवाले, समर्थ एवं कृपालु भगवान् कपिल को आनन्दसहित अपनी गोद में लिए हुए शोभा पा रहे हैं। यह सुनकर श्रीमहाराजजी ने आदरसहित उन्हें अभिवन्दन किया। तपधाम कर्दम ऋषि भी ललककर श्रीसरकार से मिले। फिर कर्दम मुनि विराज कर, श्रीगुरुदेव की ओर देखकर, संतों से कहने लगे कि ये राम उपासी महापुरुष हैं जो श्रीअवध में जानकीघाट पर निवास करते हैं। इनका शुभ नाम श्रीरामवल्लभाशरण है। ये साक्षात् राम के अवतार हैं।

इन्होंने कलियुग के पापी जीवों के उद्धार के लिए तथा श्रीरामभक्ति प्रचार के लिए ही अवतार धारण किया है। ये आज हमारे प्रिय पाहुना हैं जो कृपा करके हमारे प्रदेश में पधारे हैं। इनके साथ में जो श्रीरामलालजू हैं, उन्हें बहुत ही भूख लगी है। अतः शीघ्र ही अग्नि चिता कर अमुक-अमुक शाक और व्यंजन तैयार करो और श्रीलाल साहब को भोग लगाकर संतों सहित इन्हें बड़े ही मनुहार के साथ पवाओ।

इस प्रकार का स्वप्न देखकर जब श्रीगुरुदेव जगे तो अयोध्यादास ने आकर निवेदन किया कि मैंने अभी-अभी एक स्वप्न देखा है जो ठीक वही था जिसे श्रीसरकार ने देखा था। श्रीमहाराजजी ने कहा कि कर्दम ऋषि की हमलोगों पर असीम अनुकम्पा है क्योंकि मुझे भी उन्होंने यही स्वप्न दिया है।

इतने ही में रेलगाड़ी सिद्धपुर स्टेशन पर पहुँच गई। सभी साधुओं के साथ उतर कर श्रीगुरुदेव एक संत-स्थान पर जा कर ठहरे। वहाँ के संतों ने दौड़कर श्रीसरकार के चरणों में दण्डवत् किया और कहा कि अब जरा भी विलम्ब न करें और शीघ्र ही स्नान तथा भजन कर लें क्योंकि आपके साथ में जो श्रीरामलालजू हैं उन्हें बहुत ही क्षुधा लगी है। उन्हें भोग लगाएँ, बहुत ही देर हो गई है।

इधर साधुओं सहित श्रीगुरुदेव स्नान-भजन आदि से निबटने लगे और उधर बहुत ही उत्साह के साथ वहाँ के संतों ने विविध भाँति के व्यंजन तैयार किए। उन्होंने उन्हें श्रीलाल साहब को भोग लगाया और संतों सहित श्रीसरकार को बहुत ही प्रेमपूर्वक जिमाया। आश्चर्य तो सभी संतों को तब हुआ जब उन्होंने देखा कि उस स्थान में वही-वही शाक और व्यंजन बने थे जिन्हें कर्दम ऋषि ने श्रीगुरुदेव को स्वप्न में कहा था। इस प्रकार कर्दम मुनि ने श्रीमहाराजजी के स्वागत में बहुत ही स्वादिष्ट और सुन्दर रसोई आयोजित की थी जिसे श्रीगुरुदेव ने साधुओं के साथ सादर स्वीकार किया।

इस प्रकार ऋषिराज कर्दम का आतिथ्य ग्रहण कर तथा वहाँ भी बहुत से प्रेमियों को मंत्रराज की दीक्षा प्रदान कर, श्रीगुरुदेव बगसरा पहुँचे। वहाँ के महीपति अपने समस्त कुटुम्बियों और सेवकों सहित श्रीसरकार के चरणों में नतमस्तक हुए और श्रीसरकार का आशीर्वाद प्राप्त कर मोदमग्न हो गए। रघुबीरदास के आनन्द का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। वह तो वही जान सकता है जिसका हृदय गुरुभक्ति के रंग में रंग गया हो। अनेक प्रकार के सुन्दर पाँवड़े विछाए गए थे जिस पर चलकर श्रीसरकार उनके महल में पधारे।

राजभवन में पहुँच कर एक दूसरी लीला श्रीगुरुदेव ने की। उन्होंने स्वयं ही सभी संतों को आज्ञा दी कि यहाँ

श्रीर मलालजू को पधराओ, यहाँ हमारा आसन बिछाओ, यहाँ सभी संत अपने-अपने आसन लगाएँ, यहाँ स्नान होगा और यहाँ ठाकुरजी के लिए रसोई बनेगी। जैसे रघुवीरदास की माता पहले अपने मन में सोच चुकी थीं, वैसे ही अन्तर्यामी होने के कारण श्रीसरकार ने भी ठीक वही-वही स्थान सबके लिए नियत कर दिया। यह देखकर महारानी को असीम आश्चर्य हुआ।

जब रघुवीरदास ने अयोध्यादास से प्रश्न किया कि आप कैसे हमारे यहाँ पधार गए, तब उन्होंने सब हाल कह सुनाया। सभी को विस्मय करते देखकर अयोध्यादास ने कहा कि आप सभी ऐसा अचरज क्यों कर रहे हैं, श्रीगुरुदेव परम समर्थ सिद्ध पुरुष हैं, वे सब के मन की बात जानते हैं। यह सुनकर राज परिवार के लोगों ने भी कहा कि आपकी बात बिलकुल सत्य है, हमलोगों ने भी इसका प्रत्यक्ष अनुभव एक नहीं अनेक बार किया है।

कृपासिंधु श्रीगुरुदेव ने जब राजगढ़ में आकर निवास किया, तब रघुवीरदास अपने परिवार सहित फूले न समाए। श्रीसरकार की तथा संतों की सेवा वे अपने हाथों करते और सदा ही हाथ जोड़ कर उनकी आज्ञा में पास ही खड़े रहते। उनकी भक्तिभाव और नम्रता देखकर सभी संत उनकी प्रशंसा करने लगे।

श्रीगुरुदेव के शुभागमन के उपलक्ष में वहाँ नित्य ही समारोह होने लगे। बहुत दूर-दूर से लोग आते और श्रीसरकार के दर्शन तथा उपदेशामृत का पान कर कृतकृत्य हो जाते। सभाओं में गुणियों के नाना प्रकार के पदगान

होते और विद्वान् वक्ताओं के भाषण होते। वहाँ भक्ति की गंगा बहने लगी। श्रीगुरुदेव की कृपा से सभी के मन राम-भक्ति में मग्न हो गए। असंख्यों प्रेमी उत्कण्ठित होकर शिष्य होने पधारते और श्रीमहाराजजी मंत्रराज की दीक्षा देकर सभी के भवरोग का नाश कर देते। वे वैष्णव बन कर कृतकृत्य होकर अपने-अपने घर सिधारते।

इस प्रकार सबको आनन्द प्रदान करते हुए कृपासिंधु श्रीगुरुदेव नौ दिनों तक बगसरा में रहे। एक दिन वे हडोला में भी रहे जहाँ बगसरा-नरेश निवास करते थे। पुनः जूनागढ़, गिरिनार, बेराबल, प्रभास और राजकोट आदि क्षेत्रों में भ्रमण करते हुए तथा अगणित प्राणियों के संकटों को दूर कर उन्हें मनोवाँछित वरदान करते हुए तथा श्रीरामभक्ति का प्रचार करते हुए श्रीगुरुदेव द्वारिका पहुँचे। द्वारावती काठियावाड़ की एक प्राचीन नगरी है जिसे श्रीकृष्ण ने बसाया था।

द्वारिका में श्रीगुरुदेव ने द्वारकानाथ श्रीकृष्ण के दर्शन किए। वहाँ भी भक्तों को उन्होंने असीम आनन्द प्रदान किया। फिर संतों के साथ काठियावाड़ होकर वे डाकोर पहुँचे। स्थान-स्थान पर प्रेमियों ने धूमधाम से उनका स्वागत किया। डाकोर में डाकोरनाथ ने श्रीगुरुदेव को अपने मंदिर में बुला लिया तथा कनक भवन के ठाकुरजी का रुचिर रूप धारण कर उन्हें दर्शन दिया। इस प्रकार पर्यटन करते हुए और नाना प्रकार के पावन चरित्र करते हुए श्रीसरकार अजमेर पहुँचे।

—:०:—

श्रीपुष्कर तथा जयपुर यात्रा

अजमेर स्टेशन पर उतर कर श्रीगुरुदेव पुष्कर गए। वहाँ उन्होंने संतों सहित स्नान किया और अपने हाथों से श्रीराम-ललाजू की सेवा करने लगे। श्रीसरकार नित्य सरयू जल से लाल साहब की सेवा किया करते थे। किन्तु वहाँ सरयूजल समाप्त हो गया था, अत: झारी में जो त्रिवेणी का जल भर कर आया था, उसीसे लाल साहब को स्नान कराने लगे। सब संत यह देखकर विस्मित रह गए, जब झारी में का त्रिवेणी-जल निखालिस दूध के रूप में परिवर्तित हो गया। श्रीसरकार भी यह देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने उसी दूध से लाल साहब को स्नान कराया। सभी संतों ने दिव्य चरणामृत का पान कर जयध्वनि की धूम मचा दी। श्रीमहाराजजी ने सभी संतों से कहा कि आप लोग मन में जरा भी आश्चर्य न करें। भगवान् ने ही त्रिवेणी-जल को अभिषेक हेतु दिव्य दुग्ध बना दिया है।

संतों को इस प्रकार समझाकर, श्रीगुरुदेव नित्य नियम समाप्त कर भोजन के उपरांत विश्राम करने लगे। इसी बीच जयपुर के प्रेमियों द्वारा भेजा हुआ एक प्रतिनिधि आया। उसने श्रीसरकार के चरणों में विनम्र भाव से अभिवादन कर

उन्हें जयपुर पधारने की प्रार्थना की। श्रीमहाराजजी ने भक्तवत्सल होने के कारण उनकी विनती स्वीकार कर ली।

पुस्कर में संध्या कृत्य करके श्रीगुरुदेव अजमेर आए और संतोंसहित वहाँ से रेल द्वारा जयपुर के लिए प्रस्थित हुए। जयपुर में श्रीमहाराजजी के एक कृपापात्र शिष्य वंशीधरजी जौहरी थे। उन्होंने अपने घर पर श्रीसरकार के ठहरने का प्रबंध अलौकिक उत्साह से किया। उनके प्रभाव से ही उनके सभी कुटुम्बी और सेवक वैष्णव वन गए थे।

श्रीसदगुरु जब जयपुर पहुँचे, तब अनेक भक्त तथा शिष्य-वृन्द उनका आदरपूर्वक स्वागत कर उन्हें वंशी सदन में ले आए। वहाँ श्रीसरकार पाँच दिनों तक रहे। वहाँ बड़े समारोह के साथ नित्य उत्सव होता और श्रीगुरुदेव का उपदेश सुनकर प्रेमीजन श्रीमंत्रराज की दीक्षा लेकर वैष्णव वन जाते। फिर श्रीसरकार अपने शिष्य कृष्णचन्द्र के यहाँ तीन दिनों तक रहे। इन आठ दिनों में भक्तों को सत्संग का अपार आनन्द प्राप्त हुआ। घर-घर में जाकर श्रीसरकार सभी प्रेमियों के मनोरथ पूर्ण करते और कथा तथा शुभ उपदेशामृत से सभी को तृप्त कर देते। प्रेमियों के आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता, उसे तो वे ही जानते हैं जिन्होंने इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया है। इस प्रकार सबको आनन्द प्रदान कर श्रीसरकार अयोध्या लौट आए।

—:o:—

अमावाँ नरेश पर अनुकम्पा

बिहार प्रांत में एक अमावाँ स्थान है। वहाँ के राजा का शुभ नाम श्रीहरिहर प्रसाद सिंह था। वे साधु, ब्राह्मण और देवता में श्रद्धा रखनेवाले तथा बहुत ही धर्मानुरागी थे। उनकी धर्मपत्नी उनसे भी अधिक धर्मरुचिवाली थीं। उन्हें संसार के सभी सुख प्राप्त थे किन्तु एक ही कमी थी; वह यह कि उन्हें कोई पुत्र नहीं था। पुत्र-प्राप्ति के लिए उन्होंने अनेक यत्न किए किन्तु उनमें एक भी सफल नहीं हुआ।

तब निराश होकर नृपाल ने अपने कुछ विश्वासी कर्मचारियों को आदेश दिया कि आप लोग भारत में चारों ओर भ्रमण कर किसी सिद्ध महात्मा का अन्वेषण करें जिससे पुत्र-प्राप्ति की मेरी मनोकामना पूर्ण हो। राजा के आज्ञानुसार कर्मचारी चारों ओर घूमते-घूमते श्रीअवध में डिप्टी साहब श्रीरूपकलाजी के पावन यश को सुनकर उनके पास पहुँचे। कुछ दिनों तक समीप रहकर उनके लोकोत्तर गुणों पर मुग्ध होकर कर्मचारियों ने जाकर उनका सुयश राजा से निवेदन किया। सब वृत्तान्त सुनकर नरेश भी श्रीरूपकलाजी के दर्शन करके और उनका प्रभाव देखकर पुलकित हो उठे। उन्हें दृढ़ निश्चय हो गया कि मेरा मनोरथ अब अवश्य सफल

होगा। कुछ दिनों तक उनके पास रहकर नृपाल उनसे सत्सङ्ग करते रहे और उनके उपदेशामृत का पान कर बहुत ही आनन्दित हुए। फिर उन्होंने अपने कर्मचारियों से कहा कि आपलोग महात्माजी के पास रहकर तन-मन-धन से तत्पर होकर उनको सेवा करें। जब सेवा से संतुष्ट होकर वे स्वयं पूछें कि महीपति की क्या अभिलाषा है तब आपलोग बड़ी ही नम्रता के साथ मेरी मनोकामना उनसे निवेदन करें।

इस प्रकार नरेश के आदेशानुसार कर्मचारो श्रीरूपकलाजी की एक पैर पर खड़े होकर सेवा करने लगे। कभी-कभी राजा स्वयं आकर उनकी देख-रेख कर जाते। तब एक दिन प्रसन्न होकर श्रीरूपकलाजो ने पूछा कि कहो भाई! आखिर राजा का क्या मनोरथ है? तब कर्मचारियों ने विनयपूर्वक प्रार्थना को कि सरकार तो सर्वज्ञ हैं, सरकार को तो सभो बातें विदित ही है। किन्तु फिर भी सरकार के आदेशानुसार हमें यही विनती करनी है कि महीपति को कोई पुत्र नहीं है। ऐसी अनुकम्पा कर दें कि उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति हो। तब महात्माजी ने विचार कर कहा कि यद्यपि यह कार्य है तो अत्यन्त कठिन फिर भी एक यत्न करने से राजा पुत्रवान् हो सकते हैं। श्रीजानकीघाट पर पण्डित श्रीवल्लभाशरणजी महाराज निवास करते हैं। वे साक्षात् भगवान् राम के अवतार और परम समर्थ महापुरुप हैं। मैं अधिक क्या कहूं,

उनकी ही कृपा दृष्टि से मेरे भी लोक और परलोक दोनों ही बन गए। आपलोग हमारे साथ उनके पास चलें और नृपाल की अभिलाषा हसलोग उनसे निवेदन करें। यदि वे हमारी विनती स्वीकार कर लें तो निश्चय ही राजा का मनोरथ सफल हो जाए।

ऐसा कहकर श्रीरूपकलाजी कर्मचारियों को साथ लेकर श्रीगुरुदेव के पास गए। राजा की मनोकामना उन्होंने निवेदन की। श्रीसरकार ने हँसकर कहा कि यदि राजा यहाँ आकर श्रीरामार्चा करें तो भगवान राम अवश्य उनके मनोरथ को सफल करेंगे। यह सुनकर डिप्टी साहब हर्षित हो गये। अपने स्थान पर लौट कर उन्होंने राज-कर्मचारियों से कहा कि श्रीमहाराजजी अमोघवाक् हैं, आपलोग राजा को यह शुभ संदेश सुना दें।

संदेश सुनकर राजा अपनी रानी सहित श्रीगुरुदेव के स्थान पर आए। उन्होंने श्रीसरकार के चरण कमलों में प्रेस सहित नतमस्तक होकर उनका चरणोदक ग्रहण किया। परम कृपालु श्रीगुरुदेव ने नृपाल से कहा कि कलियुग में रामयज्ञ रामार्चन अमोघ फलदायक साधन है। इसे श्रद्धा सहित सम्पन्न करके आप शीघ्र ही अपना अभिमत फल प्राप्त कर लें। राजा ने सविनय प्रार्थना की कि यह दास इसी के लिए सरकार के श्रीचरणों में उपस्थित हुआ है। कृपया

शीघ्र रामार्चा का प्रबन्ध करा दें। श्रीसरकार ने अपने ही स्थान में श्रीरामार्चन की तैयारी करा दी।

सविधि रामार्चा सम्पन्न हुई। श्रीगुरुदेव ने स्वयं कथा कही और उसकी महिमा समझाई। वैष्णव तथा साधुओं को प्रसाद बाँटा गया और ब्राह्मणों को नाना प्रकार के दान दिए गए। श्रीरामयज्ञ के पूर्ण होने पर नृपाल ने श्रीगुरुदेव के चरणों में भक्ति सहित वन्दना की। श्रीमहाराजजी ने कहा कि आपने बड़ी श्रद्धा से कथा सुनी है। अतः आपका मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा। आपको अमुक तिथि को पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी।

राजा श्रीमुख से वरदान सुनकर आनन्दमग्न होकर अपने घर आए। उन्हें आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब ठीक उसी तिथि को रानी ने पुत्र-प्रसवन किया। इस मंगलमय अवसर पर धूम-धाम से राजा ने महोत्सव किया। साधु और ब्राह्मणों को नाना प्रकार के दान दिए। राजा सुत को पाकर पूर्णकाम हो गए। तब राजा ने श्रीगुरुदेव को अमावाँ चलने की प्रार्थना की। श्रीसरकार विनती स्वीकार कर अमावाँ पधारे। राजा-रानी के हृदय आनन्द से भर गए। उन्होंने अपने नवजात शिशु को श्रीगुरुदेव के चरणकमलों पर डाल दिया। उसके मस्तक पर हाथ रखकर श्रीसरकार ने शुभ आशीर्वाद प्रदान किया।

राजा-रानी ने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक श्रीगुरुदेव का चरणोदक लिया। उन्होंने अपने समस्त कुटुम्बियों सहित श्रीसरकार के उपदेशामृत का पान किया। श्रीमहाराजजी के सारगर्भित उपदेशों को सुनकर समस्त कुटुम्बी गुरुभक्ति के रंग में रँग गए। इतना ही नहीं नगरवासियों ने भी श्रीसरकार के दर्शन से अपने नयनों को सफल किया और अधिकांश श्रीमंत्र-राज की दीक्षा लेकर वैष्णव बन गए। सच्चे संत के पदार्पण से महीपति का महल सहस्र गुणा शोभा पाने लगा।

इसी बीच एक संकट उपस्थित हो गया। राजा की बहन रोगग्रस्त होकर मरणासन्न हो गई। नरेश ने संकोचवश श्रीमहाराजजी से यह बात कही नहीं। राजा के सुखदेव नामक कम्पाउंडर, बहुत ही घबराए हुए दवा बनाकर, उन्हें पिलाने जा रहे थे। श्रीसरकार ने उनसे पूछा कि आप इतना व्यग्र होकर कहाँ जा रहे हैं। तब उन्होंने राजा की बहन की दयनीय दशा कह सुनाई। श्रीसरकार ने कहा कि आपने मुझसे पहले क्यों नहीं कहा। यह अभिमंत्रित जल मैं देता हूँ, इसे लेकर आप उनके कण्ठ के नीचे किसी प्रकार उतार दें। कम्पाउंडर जल लेकर जब गए, तब राजा की बहन का मुख खुलता ही नहीं था। हार कर कम्पाउंडर औजार लगाकर उनका जबड़ा खोला और चम्मच से ज्यों-त्यों करके जल को कण्ठ के अन्दर पहुँचा दिया। जैसे ही जल भीतर

गया, राजा की भगिनी को वैसे ही होस आ गए। रोग दूर हो गया, केवल निर्बलता रह गई। तव कम्पाउंडर ने हर्षित होकर राजा से सब वृत्तांत कह सुनाया। सुनते ही राजा आनन्द में मग्न होकर अपने परिवार सहित दौड़ कर श्रीगुरुदेव के चरणों में गिर पड़े।

श्रीसरकार ने आज्ञा दी कि सभी अपने-अपने कार्य को आनन्द से करें। जब भी कोई कठिनाई उपस्थित हो, मुझे आप सब खबर करें। श्रीगुरुदेव के कृपापूर्ण वचन सुन कर महीपति हर्षित हो गए। श्रीसरकार के शुभागमन के मंगलमय अबसर पर उन्होंने महान् उत्सव का आयोजन किया। श्रीगुरुदेव ने ऐसे सुन्दर ढंग से भक्ति से अनिप्रोत प्रवचन किया कि सभी नगरवासी श्रीराम के अनुरागी बन गए।

इस प्रकार से भूपति को भलीभाँति अपनाकर तथा अमावाँ में बहुत वैष्णव वनाकर श्रीसरकार ने महिपति को आशिष् दिया कि आपके और भी पुत्र होंगे और आपका राज्य दुगुना हो जाएगा। आप सदा संत, ब्राह्मण तथा भगवान् में प्रेम भाव रक्खें तथा अधर्म को त्यागकर धर्म पर चलें। श्रीगुरुदेव तो केवल भाव के भूखे थे। अतः वे महीपति को यह सुन्दर सीख देकर संतों के सहित श्रीअवध लौट आए।

राजा ने अपने शिशु के समस्त संस्कार समय-समय पर सम्पन्न किए। ब्राह्मणों को भी उन्होंने भाँति-भाँति के दान दिए। किन्तु महीपति चिंतित हो उठे जब शिशु कुछ बड़ा होने पर भी अन्न बिलकुल नहीं खाता था। उन्होंने श्रीगुरुदेव के पास पत्र लिखा कि कृपया कोई ऐसा यत्न कर दें जिसमें शिशु अन्न ग्रहण करने लगे। श्रीसरकार ने उत्तर दिया कि इसके लिए एक ही यत्न है और वह यह कि आप श्रीअवध आकर संतों का एक बृहत् भण्डारा करें। जब सव संत तृप्त होकर आशीर्वाद प्रदान करेंगे तब राजकुमार अन्न खाना आरम्भ कर देंगे।

श्रीमहाराजजीं के आदेशानुसार भूपति अपने परिवार सहित अयोध्या आये और एक वहुत हीं सुन्दर भंडारा आयोजित कर सभी संतों को भाव सहित निमंत्रित किया। नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन उनको जिमाए गए और वस्त्र तथा दक्षिणा अर्पित की गई। संतों ने जय-जयकार कर मनोवांछित आशीर्बाद प्रदान किया। इसके बाद परम आश्चर्यमय फल दृष्टिगोचर हुआ। उधर संत सब तृप्त होकर अपने-अपने स्थान को गए, इधर राजकुमार ने अन्न खाना आरम्भ कर दिया।

एक बार राजकुमार वहुत ही बीमार पड़ गए। वे जो भी भोजन करते, उसे उलटी कर देते। यहाँ तक की जो दवा

दी जाती, वह भी कै कर देते। नाना प्रकार की चिकित्साएँ की गई किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। राजकुमार की ऐसी विकट अवस्था देख कर राजा बहुत घबराए। उन्होंने तत्काल श्रीगुरुदेव के पास पत्र लिखकर राजकुमार का हाल एक कर्मचारी के द्वारा भेजा। श्रीसरकार ने यह समाचार सुनकर मन में विचार किया और पत्र लिखवा दिया कि राजकुमार को कोई रोग नहीं है। यह आपलोगों की ही भूल है। आपलोगों ने उसे धर्म के प्रतिकूल अन्न खिला दिया है। इसीसे उसे यह असाध्य व्याधि हो गई है। वह रोगमुक्त हो जाएगा यदि आज से आप सभी प्रण कर लें कि उसे वैष्णव विरुद्ध पदार्थ कभी न खिलाएँगे।

उत्तर सुनकर महीपति ने पूछ-ताछ की, तब पता चला कि राजकुमार ने निषिद्ध भोजन (तामसी पदार्थ का सेवन) कर लिया था। जिस दिन से उसने वैष्णववर्ज्य पदार्थ खाया, उसी दिन से उसके पेट में विकार हो गया। यह बात सुनकर राजा बहुत ही संकुचित हुए और उसके बाद उन्होंने प्रण कर लिया कि अब राजकुमार को भविष्य में कभी अभक्ष्य पदार्थ छूने भी नहीं दूँगा। फिर क्या था, राजकुमार की व्याधि तत्क्षण मिट गई। वे पूर्ण स्वस्थ हो गए। उन्हें निरोग देखकर राजा परिवार सहित बहुत ही प्रसन्न हुए।

एक बार अमावां-नरेश कलकत्ते में बहुत ही रोगग्रस्त हो गए। चिकित्सकों ने भाँति-भाँति के उपाय किए किन्तु

किसी भी औषध से उन्हें लाभ नहीं हुआ। रोग घटने के बजाय प्रतिदिन बढ़ने ही लगा। अन्न पचता ही नहीं था और साथ-ही-साथ निर्बलता बढ़ती जाती थी। तब राजा अपने हृदय में बहुत घबराए और अपना हाल श्रीगुरुदेव के पास पठाए। श्रीसरकार ने कहा कि आप चिंता बिलकुल त्याग दें। केवल जलवायु का परिवर्तन कर दें, बस आप स्वस्थ हो जायँगे।

श्रीमहाराजजी की आज्ञा पाकर महीपति ने प्रयागराज में जाकर कुछ दिनों तक निवास किया। श्रीगुरुदेव के आशीर्वाद का चमत्कार तत्काल देखने में आया। जिस दिन राजा प्रयाग पहुँचे, उसी दिन से रोग घटना आरम्भ हो गया। श्रीसरकार की कृपा से कुछ ही दिनों के अन्दर भयंकर व्याधि मिट गई। भूपाल श्रीगुरुदेव की प्रभुता का गुणगान करते हुए पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ कर, मुदित मन से अमावाँ प्रस्थित हुए।

श्री गुरुदेव भूपाल की रक्षा उसी प्रकार करते जैसे माता अपने दूधमुँहे बच्चे की। महीपति भी श्रीमहाराजजी की सेवा में सदा तन-मन-धन से तत्पर रहते। वे बार-बार अपने कुटुम्बियों के साथ अयोध्या आते और मुदित मन से श्रीगुरुदेव के दर्शन करते तथा उत्साह के साथ श्रीरामार्चा कराते। स्वयं तो रामार्चन करते ही, अपने भिन्न-भिन्न कुटुम्बों

से भी यह रामयज्ञ करवाते। जब कभी वे सुन लेते कि श्रीगुरुदेव को मामूली सर्दी भी हो गई है, तब अपने राज-काज को छोड़कर तत्काल श्रीअवध आकर उनका उपचार सम्यक् प्रकार से करवाते।

इतना ही नहीं, उनकी शीलवती रानी, उनसे भी लाख गुणा बढ़कर श्रीगुरुदेव के चरणकमलों में श्रद्धा रखनेवाली थीं। मीराँबाई जैसे गिरधर गोपाल को अपना सच्चा प्रीतम मानती थीं, वैसे ही रानी साहिबा भी श्रीमहाराजजी को अपना इष्टदेव ही मानती थीं। उन्होंने अपने संबंधियों को ही नहीं, बल्कि अपने सेवकों को भी श्रीसद्गुरु की शरण में लाकर, उनके भवरोग का नाश करा दिया।

एक रघुनन्दन शरण नामक मास्टर थे। वे श्री अवध में ही रहते थे। उन्हें राजा-रानी ने तैनात कर रखा था कि वे नित्य श्रीगुरुदेव के स्वास्थ्य का समाचार उनके पास पत्र द्वारा दें। इसके अलावा, रानी और राजा जो हाल पठाते, उन्हें वे श्रीगुरुदेव से फौरन कह देते। कोई आवश्यक कार्य वे श्रीमहाराजजी से विनयपूर्वक निवेदन कर देते, और श्रीसरकार उस कार्य को अविलम्ब सिद्ध कर देते। राजा-रानी के संकटों को श्रीगुरुदेव उसी प्रकार हर लेते जैसे सूरज भगवान अन्धकार को दूर कर देते हैं।

श्रीगुरुदेव की अनुकम्पा से नृपाल का राज्य दूना हो गया। उन्हें टेकारी राज्य की भी प्राप्ति हो गई। इससे

श्रीसरकार में उनकी श्रद्धा और भी बढ़ गई। राजा और रानी श्रीगुरुदेव को अपना जीवन-धन ही समझने लगे। सब प्रकार से वे उनकी सेवा में उपस्थित रहने लगे। जहाँ एक पुत्र का मुँह देखना भी दुर्लभ था, वहाँ उनकी आँखों के सामने अनेक पुत्र क्रीड़ा करने लगे। दोनों पुण्यात्माओं के उभय लोक बन गए।

श्रीसरकार को वृद्धावस्था को देखकर रानी और राजा ने विचार किया तथा रामचरित्र बाबू नामक एक सज्जन को अपनी ओर से उनकी सेवा में तैनात कर दिया। ये रामचरित्र बाबू श्रीगुरुदेव के ही शिष्य थे। यद्यपि उनकी सेवा में अनेक साधु एक पैर पर खड़े रहते किन्तु रामचरित्र बाबू उत्साह सहित बहुत लगन के साथ श्रीमहाराजजी की सेवा में सदा सजग रहकर तत्पर रहते। श्रीगुरुदेव भी उनको अपना सच्चा सेवक समझकर, उनसे स्थान के अनेक कार्य सम्पन्न कराते। बीच-बीच में रानी और राजा भी श्रीअवध आ-आकर श्रीसरकार की सेवा में स्वयं उपस्थित हो जाते।

—:०:—

श्रीहरिनाम संकीर्तन तथा रामधुनि प्रचार

श्रीगुरुदेव ने रामार्चा के प्रचार द्वारा तो अगणित प्राणियों का कल्याण किया ही, उन्होंने हरिनाम संकीर्तन तथा रामधुनि के प्रचार द्वारा भी विश्व का अकथनीय उपकार किया।

श्रीअवध में श्रीभगवान प्रसाद नामक एक संत थे जो पहले बिहार में डिप्टी इंस्पेक्टर ऑफ स्कूलस् रह चुके थे। इनका उपनाम श्रीरूपकलाजी था। इन्हें अपने पद से इस्तीफा इसलिए देना पड़ा कि एक दिन ये भगवान् के ध्यान में इतने तल्लीन हो गए कि एक विद्यालय का निरीक्षण करने नहीं जा सके। उस दिन श्रीरूपकलाजी का रूप धारण कर स्वयं भगवान् ने ही जाकर विद्यालय का निरीक्षण किया। दूसरे दिन जब इन्हें पता चला कि भगवान् ने स्वयं जाकर मेरा काम किया है, तब इन्हें बड़ी ग्लानि हुई कि मेरे कारण भगवान् को इतना कष्ट करना पड़ा और इन्होंने अपने पद से इस्तीफा दे वैराग्य धारण कर लिया तथा अपने गुरु श्रीहंसकलाजी की आज्ञा लेकर जीवन के अंत तक श्रीअवध में निवास किया। ये अवध में रहकर

श्रीकिशोरीजी के भजन में लवलीन रहते और परम दुर्लभ मानव शरीर का सुन्दर फल पाकर परम कृतार्थ हो गए।

एक दिन श्रीरूपकलाजी ने एकान्त में श्रीमहाराजजी से मिल कर उनसे प्रार्थना की कि हमारे श्रीगुरुदेव के हृदय में यह लालसा जाग्रत हुई कि जगत् में हरिनाम का समुचित प्रचार हो क्योंकि कलियुग में निस्तार का एक यही उपाय है। इसके प्रचार के लिए ही उन्होंने एक संस्था स्थापित की है। यद्यपि इस संस्था का कार्य वे ढाई वर्षों से लय लगाकर कर रहे हैं और इसके दो वार्षिक अधिवेशन भी हो चुके हैं तो भी नाम-प्रचार में संतोषजनक प्रगति नहीं हो रही है। मैं भी इसमें यथाशक्ति सहयोग दे रहा हूँ।

उन्होंने एक पत्र लिखकर भेजा है कि इस संस्था की वृद्धि का एक ही सच्चा उपाय है। श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराज श्रीराम के अंशावतार हैं। अतः उनसे मेरी बिनती सुनाइए कि वे हरिनाम संकीर्तन सम्मेलन के स्थायी सभापति बन जायँ। वे अधम-उद्धारक, पर उपकार रत करुणाशील महात्मा हैं। वे हमें अवश्य कृतार्थ करेंगे, इसमें मुझे जरा भी संशय नहीं है। प्रभु ने मुझे आदेश दिया है कि भक्ति के प्रचार के लिए ही उनका अवतार इस अवनि पर हुआ है। उनके अपनाते ही संकीर्तन सम्मेलन विश्व-व्यापी बन जाएगा।

अतः हे श्रीसरकार! मेरे गुरुदेव और मेरी प्रार्थना कृपया स्वीकार कर सम्मेलन के सभापति-पद को स्वीकार कर लें। प्रेम में पगी डिप्टी साहब की विनती सुनकर श्रीमहाराजजी कुछ देर तक विचार करते रहे और फिर उन्होंने कहा कि हे डिप्टी साहब! आप जैसा चाहते हैं वैसा ही होगा। यह मनोवांछित वरदान पाकर डिप्टी साहब वैसे ही हर्षित हो गए जैसे पपीहा स्वाति नक्षत्र के जल को पाकर।

उन्होंने अपने गुरु श्रीहंसकलाजी के पास यह शुभ वृतान्त लिखकर भेज दिया। श्रीहंसकलाजी को जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वे भागलपुर में ही रहकर तीसरे अधिवेशन की तैयारी करने लगे। उन्होंने तत्काल एक सभा आयोजित की और एक कार्यकर्त्ता को श्रीमहाराजजी के पास भेजा। उसने कहा कि सम्मेलन का अधिवेशन गया में होने वाला है, अतः श्रीसरकार अपने करकमलों से स्वीकृति-पत्र लिख दें। श्रीसरकार की कृपा का आश्रय पाकर यह संस्था रूपी लता समस्त विश्व में फैल जाएगी। तब कारूण्य कृपामय श्रीमहाराजजी ने सभापति-पद ग्रहण की स्वीकृति अपने हाथ से लिख कर दे दी। पत्र को सिर चढ़ाकर वह कार्यकर्त्ता श्रीहंसकलाजी के पास गया। श्रीहंसकलाजी पत्र पढ़ कर आनन्द विभोर हो गए।

श्रीहंसकलाजी ने पत्र तथा नोटिस द्वारा यह शुभ संवाद समस्त भारतवर्ष के कोने-कोने में भेज दिया। जब गया में तीसरा अधिवेशन आयोजित किया गया तब बहुत-से भावुक संतगण तथा अनेक रईस उसे देखने तथा उसमें भाग लेने के लिए पधारे। प्रेमियों ने धूमधाम से सम्मेलन की तैयारी की। बहुत ही सुन्दर सभा-मण्डल बनाया गया तथा स्वागत का प्रबन्ध भी बेजोड़ किया गया। जो दूर-दूर से प्रेमी आए थे, उन्हें उत्तम स्थानों पर ठहराया गया। विगत सम्मेलन से दुगनी भीड़ हुई। इतना सुन्दर प्रबन्ध था कि सभी को सब बातों का सुपास था, किसी को किसी चीज की तकलीफ नहीं हुई।

सभी लोग उत्कण्ठित हो कर प्रतीक्षा करने लगे कि सभापतिजी कब पधारें और हमलोग पूज्यपाद का स्वागत कर अपने जन्म और जीवन को सफल करें। जैसे चातक और मोर मेघ के आगमन की प्रतीक्षा करते हैं, वैसे ही प्रेमीगण श्रीगुरुदेव के आगमन की बाट जोहने लगे। आखिर नियत समय पर श्रीसरकार के संतों सहित पधारते ही नगर भर में जयध्वनि की धूम मच गई।

सम्मेलन के अधिकारी बहुत ही सुन्दर सवारी सजा कर ले गए और उसी में बैठाकर उन्हें सभा मंडप में लाए तथा उच्च सिंहासन पर पधराए। श्रीहंसकलाजी तथा अन्य प्रेमियों ने बहुत ही उत्साह के साथ आनन्द में भर कर उनको

बिधिवत् पूजा की और उनके चरणों में दण्डवत् कर सभापति पद ग्रहण करने की विनती की। कृपालु श्रीगुरुदेव ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ऐसा सारगर्भित भाषण किया कि जिन्होंने उसे सुना, वे संकीर्तन के प्रेमी बन गए।

श्रीगुरुदेव के दिव्य तेज का दर्शन कर तथा उनके महत्वपूर्ण अनुपम उपदेश को श्रवण कर प्रेमीगण कृतार्थ स्वरूप हो गए। श्रीसरकार के प्रताप से संकीर्तन मण्डलियों ने भी श्रीहरिनाम का मधुर और सरस कीर्तन कर सम्मेलन में अलौकिक आनन्द का संचार कर दिया। कहाँ तक वर्णन किया जाय, सभी लोग प्रेम में छक गए। वे इतने प्रेम विभोर हो गए कि अपने तन की सुध-बुध खो बैठे। लोगों पर ऐसा प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा कि सभी ने निश्चय कर लिया कि हमलोग अपने-अपने घर पर नित्य कीर्तन अवश्य करें।

श्रीमहाराजजी ने हरिनाम संकीर्तन की महिमा का बखान इतने सरस ढंग से किया कि जनता के चित पर उसका अद्भुत प्रभाव पड़ा। अनेक प्रेमियों ने सम्मेलन की शाखा की स्थापना स्थान-स्थान पर करने का दृढ़ संकल्प लिया। इस अधिवेशन के उत्सव में जो आनन्द उमगा, उसका वर्णन शारदा और शेष भी नहीं कर सकते। असंख्यों प्रेमियों ने श्रीगुरुदेव से मंत्रराज की दीक्षा लेकर अपने मानव-जीवन को सफल कर लिया। इस प्रकार सम्मेलन को सफल

कर श्रीसरकार श्रीअवध पधारे। उनके प्रताप से कुछ ही समय में संकीर्तन का समस्त देश में प्रचार होने लगा।

श्रीहंसकलाजी संकीर्तन का देशव्यापी प्रचार देखकर अत्यन्त हर्षित हुए और उन्होंने डिप्टी साहब श्रीरूपकलाजू को एक पत्र लिखा जिसमें सम्मेलन की उन्नति का सब ब्योरा था। वे पत्र लेकर श्रीगुरुदेव के पास आए और सादर अभिवादन कर उनका पावन पादोदक ग्रहण किए। फिर उन्होंने नम्रभाव से मधुर वचनों में निवेदन किया कि हे करुणामय! मेरे गुरुदेव का कृपापत्र आया है जिसमें श्रीसरकार के चरणकमलों में उन्होंने अपना सादर अभिवन्दन किया है और श्रीसरकार का पावन चरणामृत मँगवाया है। सम्मेलन के विषय में उन्होंने यह समाचार पठाया है कि जब से श्रीसरकार ने उसे अपनाया है, तब से उसका प्रचार इतनी प्रगति से हो रहा है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

श्रीहंसकलाजू का यह प्रहर्षमय पत्र सुनकर श्रीमहाराजजी ने श्रीरूपकलाजू से कहा कि हमारा आशीर्वाद आप श्रीहंस-कलाजू को लिख दें और जो वस्तु उन्होंने मँगवाई है उसे रवाना कर दें। सम्मेलन के विषय में लिख दें कि जैसा हरिनाम का प्रचार होना चाहिए वैसा अभी नहीं हो पाया है। इस कार्य में कुछ समय लगेगा। अभी-अभी तो वृक्ष ही जमना आरम्भ हुआ है, फूल तथा फल लगने में अवश्य समय लगेगा। हमलोगों

को तो माली की तरह संकीर्तन रूपी वृक्ष को सींचते रहने की आवश्यकता है। प्रभु कृपा करके हमारे प्रयत्न को अवश्य सफल करेंगे।

यह सुनकर डिप्टी साहब ने कहा कि बाराबंकी निवासी एक प्रसिद्ध ज्योतिषी हैं। वे ग्रह देखकर जो बात कह देते हैं वह सर्वथा सत्य हो जाती है। इसमें दो मत हैं ही नहीं। मैंने भी अपनी जन्म पत्रिका उन्हें दिखाई। उन्होंने देखकर बतलाया कि आपको अब अशुभ ग्रह लगने वाले हैं और आप डेढ़ वर्ष के बाद जीवित नहीं रहेंगे। मुझे मरने का तो कोई भय नहीं है क्योंकि मैं जानता हूँ कि शरीर नश्वर है और सभी को एक-न-एक दिन मरना ही है। फिर भी सच्ची बात श्रीसरकार से कहता हूँ कि मेरे मन में यही अभिलाषा है कि प्रभु के आश्रित रहकर भगवन्नाम का प्रचार करूँ और इसके विस्तार को अपनी आँखों से देखूँ।

डिप्टी साहब की पुनीत मनोकामना सुनकर श्रीसरकार कुछ देर तक विचार करते रहे। उन्होंने कहा कि यद्यपि आनेवाले ग्रह परम भयंकर हैं किन्तु भगवन्नाम का प्रताप सर्वोपरि है। चूँकि आप भगवन्नाम का ही जगत् में प्रचार करना चाहते हैं, अतः ग्रह आपका कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकते। अभी आप बीस वर्षों तक जीवित रहेंगे। केवल थोड़ी-सी पीड़ा होगी और अशुभ ग्रह टल जाएँगे। आपका

बाल बाँका भी नहीं हो सकता। अतः ग्रहशान्ति का एकमात्र उपाय यही है कि आप निरन्तर भगवन्नाम का प्रचार करें। इस प्रकार वरदान प्राप्त कर श्रीरूपकलाजी अपने स्थान को सिधार गए।

श्रीरूपकलाजू ने अपने गुरु श्रीहंसकलाजू के पास श्रीसरकार के आदेशानुसार पत्र भेज दिया। हरि कीर्त्तन के प्रचार का कार्य अनवरत चलता रहा। परिणाम यह हुआ कि चौथे वार्षिक अधिवेशन में तीसरे सम्मेलन से दुगुना प्रचार हुआ। इसके बाद पटना, भागलपुर, गया, अवध आदि स्थानों में सम्मेलन आयोजित किए गए। जहाँ-जहाँ सम्मेलन होता, वहाँ-वहाँ श्रीगुरुदेव ही सभापति होते। उनके भाषण इतने प्रभावशाली होते कि श्रोताओं के मन कीर्तनरत हो जाते। सम्मेलन की उन्नति देखकर संचालकों के हृदय आनन्द से प्रफुल्लित हो उठे। ग्रामों और नगरों में अनेक संकीर्तन मण्डलियाँ बन गईं। इस प्रकार श्रीमहाराजजी के तत्त्वावधान में संकीर्तन का प्रचार द्रुत गति से होने लगा।

यद्यपि हरिनाम संकीर्तन अचल और अनादि है, इसमें कोई संशय है ही नहीं, तथापि माया ने उसे सबके सामने से उसी प्रकार ओझल कर दिया है जैसे मेघमाला चन्द्रमा को ढँक देती है। श्रीगुरुदेव ने माया के आवरण का निवारण ठीक वैसे ही कर दिया जैसे सूर्य भगवान् मेघ का

नाश कर देते हैं। कुछ ही दिनों में हरि संकीर्तन रूपी चन्द्रमा का प्रकाश चारों ओर छा गया तथा कुमुद और चकोर रूपी प्रेमीगण उसे देखकर प्रमुदित हो उठे।

पुनः अमंगल वारण श्रीगुरुदेव ने भक्ति के प्रचार हेतु तथा संसारी जीवों के उद्धार के लिए दूसरा सुगम उपाय अपनाया। उन्होंने अपने स्थान में अखण्ड रामधुन आरम्भ कर दिया। सात संत निरन्तर 'सीताराम' नाम कीर्तन करने लगे। उनमें एक ढोलक बजाते और छः झाँझ बजाकर युगलनाम की अनवरत प्रेमसहित झरी लगाए रहते जिसे सुनकर प्रेमियों के हृदय आह्लाद से भर जाते।

इस प्रकार सात-सात संतों की टोली पहर-पहर में बदल कर निशिवासर नाम रटने लगी। श्रीहनुमानबाग नामक एक स्थान श्रीगुरुदेव का ही है जहाँ बहुत-से साधु रहकर भजन करते हैं। वहाँ भी श्रीसरकार ने पावन रामध्वनि जारी कर दी। प्रेमरस में पगकर अनेक संत श्रीहनुमानजी के समक्ष रामध्वनि करने लगे। बहुत से प्रेमी रामध्वनि सुनने आते और वे भी उनके साथ-साथ कीर्तन करने में मस्त हो जाते। श्रीअवध के अनेक स्थानों में देखा देखी अखण्ड राम-ध्वनि होने लगी। इस प्रकार परम कृपालु श्रीगुरुदेव के प्रताप से श्रीरामधुनि का प्रचार श्रीअवध में शीघ्र ही हो गया।

राम ध्वनि का श्रीअवध में ही नहीं बल्कि समस्त भारतवर्ष में प्रचार तीव्र गति से होने लगा। प्रेमीगण उत्साह सहित कहीं एकाह रामधुन आयोजित करते तो कहीं नवाह। वे 'सीताराम' रूपी नामामृत को स्वयं तो भावसहित पीते ही, दूसरों को भी पिला कर भगवत्प्रेम में छका देते। नामामृत समस्त पापों का नाश करनेवाला तो है ही, यह सम्पूर्ण दुःख, दोष और दरिद्रता को हर देता है तथा प्रभु के पदपंकज में प्रीति की वृद्धि कर देता है।

गंगा नदी में तो जाकर स्नान करने से पुण्य की प्राप्ति तथा पापों का नाश होता है, किन्तु रामध्वनि रूपी नदी में तो घर बैठे स्नान कर सज्जनवृन्द महाफल प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार श्रीगुरुदेव ने संकीर्तन और रामधुन द्वारा जगत् में भक्ति का महान् प्रचार किया। भवसागर से प्राणियों के उद्धार के लिए श्रीसरकार ने अपने जीवन के अंत तक विविध यत्न किए तथा जिस श्रीरामभक्ति के प्रचार के लिए उन्होंने इस भूतल पर अवतार धारण किया था, उसे सम्यक रूप से सम्पन्न किया।

★

बहुराजी को शरण प्रदान

पूज्यपाद जगद्गुरु स्वामी श्रीरामवल्लभाशरणजू महाराज के जीवन चरित्र को सर्वप्रथम पद्य के रूप में श्रीगंगासहायजी बहुरा ने दो भागों में रचा था। पूर्वार्ध और उत्तरार्ध—इन दोनों भागों का प्रकाशन श्रीसद्गुरु-चरितामृत के नाम से पद्यरूप में १९६४ ई० में खड्गविलास प्रेस, पटना से हुआ।

प्रस्तुत पुस्तक के "प्रथम भाग" के लेखक स्वामी श्रीजय-रामदेवजी हैं जिन्होंने बहुराजी द्वारा रचित "श्रीसद्गुरु चरितामृत' के पूर्वार्ध के आधार पर ही उसका मुख्यतः प्रणयन किया है। उत्तरार्ध का सारांश इस पुस्तक के 'द्वितीय भाग' में दिया गया है।

बहुराजी का जन्म जयपुर में हुआ था। ये बचपन से ही अस्वस्थ रहते थे। जब इनकी अवस्था पाँच वर्ष की हुई, तब इनके माता-पिता इनका जातकर्म-संस्कार करने के लिए इन्हें सोरों गंगाजी के तट पर ले गए। किन्तु दुर्भाग्यवश वहाँ इन्हें हैजा हो गया तथा ये मरणासन्न हो गए। इनके जीवन की आशा त्याग कर इनके माता-पिता शोक-विह्वल हो गए। इसी बीच सौभाग्यवश एक दिव्यमूर्ति वैष्णव वैरागी महात्मा वहाँ सहसा आ पधारे।

उन्होंने इनकी दयनीय दशा देखकर इनके पिताश्री को आदेश दिया कि इस बालक को श्रीगंगा में स्नान करा कर गंगाजल का ही इसे पान कराएँ। जरा भी विलम्ब न करें, धैर्य धारण करें, श्रीभगवान् इसकी रक्षा अवश्य करेंगे। पिताश्री ने महात्माजी की आज्ञा का अक्षरश: पालन किया जिससे इन्हें तत्काल चेतना आ गई। इन्हें स्वस्थ देखकर इनके माता-पिता बहुत ही प्रसन्न हुए और महात्माजी से उन्होंने करबद्ध प्रार्थना की कि ऐसा उपाय बताएँ जिससे बालक सदा निरोग रहे। यह सुनकर दिव्य संतजी ने कहा कि इसके स्वस्थ रहने का एकमात्र उपाय यही है कि इस बालक को आपलोग राम उपासक बना दें। अब आपलोग सानन्द घर जाएँ। परम कृपालु श्रीसीतारामजी इसे अब स्वस्थ ही रखेंगे।

इनका जातकर्म संस्कार करके इनके माता-पिता इन्हें जयपुर लाए। गंगा तट पर जिस दिन से महात्माजी की इन पर कृपा हुई, उसी दिन से इनके सभी रोग छूट गए और शीघ्र ही इनकी दशा सुधरने लगा। इन्हें पूर्ण स्वस्थ देखकर इनके सभी कुटुम्बी हर्षित हो गए। चूँकि गंगातट पर इनके प्राणों की रक्षा हुई तथा भयंकर रोग भी टल गया, अत: इनके गुरुजनों ने इनका नाम गंगा सहाय रख दिया। ७ वर्ष की अवस्था में इनके पिताश्री ने इन्हें हिन्दी अक्षर का बोध करा कर इन्हें तुलसीकृत रामायण के पाठ करने का अभ्यास

करा दिया। ११ वर्ष की उम्र में इनके पिताश्री का स्वर्गवास हो गया। तब जयपुर के राजा ने इन्हें इनके पिता के ही पद पर बहाल कर लिया और वहाँ के नरेश की छत्रछाया में ही रहकर ये विद्या प्राप्त कर बुद्धिमान् बने।

एक बार राजकार्य से बसी नामक ग्राम में इन्हें जाना पड़ा। वहाँ एक तपोमूर्ति सिद्ध महात्मा से इनकी भेंट हो गई। अवसर पाकर एकान्त में इन्होंने उनसे संसृति से तरने का सुगम उपाय पूछा। तब उन्होंने बतलाया कि राम भक्तों का सदा ही संग करो, मानस का पाठ नियम से करो तथा मंत्रराज श्रीराम नाम का लय लगाकर यथाशक्ति जप करो। इस अथाह भवसागर से पार होने का यही सरल उपाय है।

महात्माजी के उपदेश को हृदय में धारण कर ये जयपुर आए। पिताश्री की शिक्षा के अनुसार तो ये पहले से ही मानस पाठ करते थे किन्तु संतजी का उपदेश सुनकर इन्होंने इसका पाठ दूना कर दिया। इसी बीच संयोगवंश 'सतसई' के रचयिता जो बिहारी कवि हैं, उनके एक वंशज अमरकृष्ण ने इनके घर पर आकर कुछ दिनों तक निवास किया। उन्होंने इन्हें रामायण का बहुत ही सुन्दर अर्थ सुनाया तथा कविता की रचना का व्यसन लगा दिया। इसके बाद ही ये धाराप्रवाह कविता करने लगे और अपना उपनाम इन्होंने 'प्रेम' रख लिया।

पुनः महात्माजी जब जयपुर पधारे तब इन्होंने उनसे कहा कि मैं आपके उपदेशानुसार नित्य मानसपाठ करता हूँ तथा रामनाम जपता हूँ। उन्होंने इन्हें समझाया कि तुमने मेरी सीख मानकर उसके अनुसार आचरण किया, इससे मैं तुम पर अतिशय प्रसन्न हूँ। तुम मुझ पर श्रद्धा रखते हो, इससे परम रहस्य की बात तुमसे कहता हूँ। जो संसार-सागर से पार होने के उपाय सद्ग्रन्थों में वर्णित हैं, वे निःसन्देह कल्याणकारक हैं। किन्तु जब तक सद्गुरु के द्वारा विधिवत् कानों में उनका उपदेश नहीं पड़ता, तब तक पूर्ण फल की प्राप्ति कदापि नहीं होती। यही वेद, पुराण तथा संतों का दिव्य संदेश है। अतः प्रथम कार्य तुम यह करो कि सद्गुरु की शरण ग्रहण कर राममंत्र की दीक्षा लेकर श्रीरामानन्दी वैष्णव बन जाओ। यह सर्वोत्तम पथ है जिस पर चलने से तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा। सद्गुरु भजन की जो विधि बताएँ, उसी के अनुसार तुम लय लगाकर भजन करना।

इस कलियुग में बहुत-से लोग यह सोचते हैं कि ग्रन्थों में तो सभी साधन लिखे ही हैं, उन्हें पढ़कर उनके अनुसार भजन कर संसार-सागर से पार हो जाऊँगा। गुरु बनाने की आवश्यकता ही क्या है ? किन्तु यह मत वेदसम्मत नहीं है, इसमें सदा ही गिरने का डर है। यह संसार एक सागर के सदृश है, शास्त्रविहित साधन नौका के समान हैं और वेद

सद्गुरु को केवट की उपमा देते हैं जो नौका को उस पार लगा देते हैं। बिना केवट के नौका की जैसी डावाँडोल स्थिति रहती है, वैसे ही गुरुविहिन साधन की होती है। अतः तुम जरा भी विलम्ब न करो तथा सद्गुरु की खोज कर उनकी शरण ग्रहण कर लो जिसमें तुम्हारा मानव-जीवन सफल हो जाय।

यह सुनकर इन्होंने महात्माजी से प्रार्थना की कि आप ही अपनी शरण में मुझे ले लें। इस पर उन्होंने इन्हें समझाया कि तुम्हारा कहना तो उचित ही है, किन्तु इसमें मैं तुम्हारा पूर्ण हित नहीं देखता। जिस श्रेणी का जो व्यक्ति हो, उसी श्रेणी के उसे सद्गुरु की भी आवश्यकता होती है। अतः तुम मेरी बात मानो और श्रीअवध में जाकर सद्गुरु से दीक्षा ग्रहण कर लो, इसी में तुम्हारा पूर्णरूपेण कल्याण है।

महात्माजी की आज्ञा शिरोधार्य कर बहुराजी अपने एक मित्र के साथ श्रीअवध पहुँचे तथा तीन दिनों तक सद्गुरु की खोज करते रहे। श्रीश्यामसुन्दरीशरणजी नामक एक संत ने इन्हें बतलाया कि क्या चारों ओर भटक रहे हो, कल प्रातः तुम जाकर पण्डित श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराज के श्रीचरणों की शरण ग्रहण करो। वे अशरण शरण हैं तथा साक्षात् भगवान् राम के अवतार हैं। उनके दर्शन कर अपने मन के संशय उनसे निवेदन करो। मुझे पूर्ण विश्वास

है कि वे तुम्हारे संशयों को दूर कर तुम्हें अतिशय सुख प्रदान करेंगे।

प्रातःकाल जब इन्होंने अपने मित्र के साथ जाकर पण्डितजी महाराज के चरणकमलों में दण्डवत् किया तब तत्क्षण उन्होंने कुछ उपदेश किया जिसे सुनकर इनके मन के समस्त संशय तत्काल नष्ट हो गए। फिर इन्हें कुछ पूछने की आवश्यकता न रही। इनके हृदय में ज्ञान का अनुपम प्रकाश छा गया। उसका वर्णन वे उसी प्रकार नहीं कर सके जैसे गूँगा गुड़ के स्वाद को कहने में असमर्थ होता है। कुछ क्षणों तक ये मूर्च्छा या सुषुप्ति की अवस्था रहे, देह की सुध-बुध बिलकुल जाती रही और मन में अतिशय आनन्द व्याप गया। थोड़ी देर बाद जब इन्हें चेत हुआ तब इन्होंने कातर स्वर में प्रार्थना की कि कृपया श्रीसरकार मुझे अपनी शरण में ले लें। श्रीगुरुदेव ने इनकी विनती स्वीकार कर इन्हें श्रीमंत्रराज की दीक्षा दी तथा सख्य रस की उपासना बतलाई।

इस पर इन्हें महान् आश्चर्य हुआ क्योंकि इनके मन में पहले से ही सख्य रस की उपासना लेने की इच्छा थी। जब 'भाव नाम' देने लगे तब श्रीसरकार ने इनसे कहा कि 'निधि' अपने नाम के आगे लगा लो। जब इन्होंने श्रीगुरुदेव से इसका स्पष्टीकरण करने को कहा, तब श्रीसरकार ने कहा

कि तुम कविता रचते समय अपना उपनाम 'प्रेम' लिखते ही हो, उसी में 'निधि' जोड़ कर, अपना 'भाव नाम' प्रेमनिधि' रख लो। यह दूसरा कौतुक श्रीगुरुदेव ने किया क्योंकि कविता रचने की बात श्रीसरकार से न कभी इन्होंने कही थी और न इनके मित्र ने।

संतशिरोमणि श्रीश्यामसुन्दरीशरणजी ने जो बात पहले कही थी कि श्रीपण्डितजी महाराज श्रीरघुवीर के साक्षात् अवतार हैं, यह बात अब इन्होंने प्रत्यक्ष देख ली। शरण ग्रहण करते ही श्रीगुरुदेव साक्षात् भगवान् राम के ही रूप में इन्हें दीखने लगे। उनका सरल स्वभाव, उनकी रहनी-करनी सभीमन को मोह लेते थे। उसके बाद उनके संग में रहकर उन्होंने उनके अनेक अलौकिक चरित्र देखे तथा संतों के मुख से सुना भी। उन्हीं का संकलन इन्होंने पद्य के रूप में अपने तन तथा वाणी को पावन करने के उद्देश्य से कर दिया।

—:०:—

तृतीय भाग

मेरे अनुभव

(श्रीबलदेव प्रसाद, प्रधान मंत्री, अखिल भारतीय श्रीरूपकला हरिनाम संकीर्तन सम्मेलन)

जगद्गुरु अनन्त श्रीमहाराजजी की मुझ पर लगभग ४५ वर्षों से कृपा है। मैं उनकी शरण में अपनी इच्छा से नहीं आया था, किन्तु मुझे स्वप्न में किसी दिव्य शक्ति ने प्रेरणा की थी और उस दिव्यवाणी के अनुसार ही मैं श्रीगुरुदेव के पास अवध के जानकीघाट पर आकर उनसे दीक्षा लेकर कृतार्थ हो गया। श्रीरूपकलाजी तो हमारे श्रीमहाराजजी को साक्षात् भगवान के समान मानते थे। मुझे श्रीसरकार के द्वारा अनेक अनुभव प्रत्यक्ष हुए हैं।

एक बार दुमंजिले कोठे पर श्रीसरकार शयन कर रहे थे। मैं भी समीप ही चरणों के निकट सो रहा था। अर्धरात्रि के पश्चात् जब मेरी नींद टूटी तो मैंने एक आश्चर्य देखा। वह यह कि एक लगभग २० हाथ लम्बे एवं काफी चौड़े, अपूर्व आकार के कोई दिव्य पुरुष श्रीगुरुदेव से वार्तालाप कर रहे हैं। पश्चात् मेरे जग जाने पर उन्होंने श्रीसरकार के मस्तक पर

हाथ रक्खा और अदृश्य हो गए। लेकिन मुझे कोई भय नहीं लगा। कौतूहलवश मैंने श्रीमहाराजजी से पूछा–"श्रीसरकार! ये कौन थे ?" तो उत्तर मिला कि ये श्रीहनुमानजी थे। अच्छा हुआ जो तुमने भी दर्शन कर लिया।

श्रीहनुमानजी कई आज्ञाएँ दे गए हैं। श्रीहनुमानबाग की रचना होगी जिसमें अयोध्या भर का सामूहिक भण्डारा होगा। इस कार्य के लिए जयपुर के एक सेठ अपनी कमाई का दशांश दस हजार रुपए भेजेंगे। पश्चात् श्रीहनुमानजी ने जैसा बताया था, वैसे ही हुआ भी। तत्काल दस हजार रुपए के नोट आए और ठीक वैसे ही सभी कार्य सम्पन्न हुए।

एक बार मैं श्रीसरकार के पास बैठा था। सतसंग हो रहा था। कठियावाड़ के राजा उसी समय आए। सूचना आई कि राजा साहब आ रहे हैं। यह सुनते ही श्रीगुरुदेव ने आज्ञा दी कि जो चटाई यहाँ पर सत्संगियों के लिए बिछी है, इसे हटा दो। चटाई हटा दी गई। राजा आया और बेचारा जमीन पर बैठा, सत्संग में उसने कई प्रश्न किए। उन प्रश्नों का श्रीसरकार ने ऐसा समुचित उत्तर दिया कि राजा उसी क्षण उनका शिष्य हो गया।

राजा ने स्वयं कहा कि मैं जिस महात्मा के पास जाता वहीं मेरा बड़ा सत्कार होता, किन्तु यहाँ पर तो मेरे बैठने की चटाई भी हटा दी गई। एक सज्जन ने पूछा कि

श्रीसरकार सब संत अपने यहाँ आते हुए सत्संगी को देखकर बड़ा भारी सत्कार करते हैं किन्तु आपने ऐसा क्यों किया ? श्री गुरुदेव ने कहा कि मैं परीक्षा ले रहा था कि अनादर होने पर राजा के हृदय में क्या भाव उदय होते हैं। जब मैंने यह देख लिया कि यह निरभिमान एवं सच्चा जिज्ञासु है तब उसे उपदेश दिया।

एक बार पश्चिम के एक मारबाड़ी की पुत्री श्रीगुरुदेव की शिष्या हुई। उस लड़की को भगवान में अत्यन्त प्रेम था। दैवयोग से उसका विवाह भी एक उत्तम गृह में हुआ। उसका पति भी भक्त था। दुर्भाग्यवश विवाह के केवल दो वर्षों के बाद ही वह लड़की मर गई। उसके विरह में उसका पति इतना व्याकुल हुआ कि उसने अन्न-जल त्याग दिया। अपने पति को प्राणान्त करते देखकर वह लड़की साकेत लोक से भगवान श्रीसीतारामजी की आज्ञा लेकर आई। उसने अपने पति को ऐसा सुन्दर ज्ञान का उपदेश दिया कि उसकी विरह-व्यथा सदा के लिए मिट गई। इसके बाद उसने बतलाया कि साकेत लोक में जाने पर फिर जीव को जन्म लेना नहीं पड़ता। वहाँ पर श्रीहनुमन्निवास के श्रीगोमतीदासजी महाराज तथा श्रीरूपकलाजी महाराज के लिए स्थान नियत हैं। उनके पश्चात् हमारे श्रीगुरुदेवजी पधारेंगे, उनका भी स्थान अभी से निश्चित है।

पुन: उसने बतलाया कि साकेत लोक में साधारण साधक नहीं पहुँच सकते। उस लोक में ऐसा दिव्य आनन्द है कि मैं उसका वर्णन नहीं कर सकती। और भी उसने कई बातें भविष्य की बतलाई जो कि वैसी की वैसी ही हुईं। वह श्रीमहाराजजी की अतिप्रिय शिष्या थी और अखण्ड भजन करती रहती थी। श्रीगुरुदेव की कृपा से ही उसे साकेत धाम की प्राप्ति हुई थी।

———

मुझे जीवन दान

(श्री चन्द्रिका प्रसाद शाही, मुजफ्फरपुर)

मुझे मृगी रोग था। मेरे पिताश्री भी मृगी रोग से मृत्यु को प्राप्त हुए थे। मैं मार्ग चलते-चलते मूच्छित हो जाता था। एक बार मेरे श्वसुर ने मेरी दुर्दशा एवं दुर्बलता देखकर कहा कि तुम जानकीघाट पर अयोध्या में चलो, वहाँ पर मेरे श्रीगुरुदेव हैं, वे सिद्ध पुरुष हैं। वे अपने तपोवल से तुम्हारा दुःख अवश्य दूर कर देंगे।

मैंने उनकी बात मानकर श्रीअवध में जाकर जानकीघाट पर ठहरा और श्रीमहाराजजी के पास जाकर अपना दुःख सुनाया। श्रीसरकार ने मुझ पर कृपा करके एक यंत्र दिया। उस यंत्र के बाँधते ही मेरा रोग सदा के लिए दूर हो गया। उस दिन से आज ३१ वर्ष हो चुके हैं, कभी भी मृगी रोग की मूर्च्छा नहीं हुई।

धन्य-धन्य श्रीगुरुदेव ! आपने मुझे जीवन दान तो दिया ही, मुझे भगवान की भक्ति भी प्रदान की।

—:o:—

श्रीमहाराज कौन थे ?

(श्रीजयनारायण लाल, वकील, आरा, बिहार)

मैं सन् १९३४ ई० में श्रीमहाराजजी के शरणागत हुआ था। मैंने योंही दीक्षा नहीं ली थी, देश देशान्तर छानबीन कर परीक्षा लेकर तब मैंने दीक्षा ली थी। मैंने उत्तम गुरु की प्राप्ति के लिए अनुष्ठान भी किए थे।

एक बार मेरा पुत्र जब ५ वर्ष का था तो उसे बड़ा भयंकर रोग हो गया। वह जो कुछ पीता, वह नाक द्वारा निकल जाता। उसे मरणासन्न देखकर मुझे महान् क्लेश हुआ। इसके कुछ ही महीने पूर्व मेरा दूसरा लड़का मर चुका था। रोते बिलखते मैं श्रीअवध आया और श्रीगुरुदेव से अपना दुखड़ा कह सुनाया। श्रीसरकार ने एक यंत्र दिया जो कि मैंने अपने मकान में लाकर टाँग दिया। उसी दिन से बालक का स्वास्थ्य सुधरने लगा और कुछ ही दिनों में वह पूर्ण स्वस्थ हो गया। आज वह बालक २१ वर्ष का है। उसकी शादी भी हो गई और उसे एक पुत्र भी हो चुका है।

श्रीमहाराजजी साक्षात् वशिष्ठजी थे या कोई अन्य महर्षि थे अथवा स्वयं साक्षात् भगवान् ही थे—कुछ निश्चय नहीं होता क्योंकि उनके चमत्कार ही ऐसे हैं। श्रीगुरुदेव जिस

दिन साकेत धाम पधारे थे उसी दिन तिब्बत के योगीराज लामा ने समाधि से उठकर अपने शिष्य से कहा—"अयोध्या के एक संत श्रीरामवल्लभाशरणजी विमान पर बैठकर साकेत लोक को जा रहे हैं देवगण उनकी पूजा तथा आरती कर रहे हैं।" यह सुनकर उस शिष्य को विश्वास नहीं हुआ। वह अयोध्या आया और उसने श्रीगुरुदेव के महाप्रयाण की तिथि का पता लगाया। उसे महान् आश्चर्य हुआ क्योंकि योगीराज लामा की बात बिलकुल ठीक निकली।

इस प्रकार श्रीगुरुदेव का प्राकाट्य और साकेत धाम गमन तथा अवनि पर की उनकी लीला देखकर मुझे तो यही लगता है कि श्रीसरकार साक्षात् भगवान ही थे।

—: o :—

पुण्य स्मृति

(श्रीबालकरामजी विनायक)

पूज्यपाद पण्डित श्रीरामवल्लभाशरणजी की स्मृतियां अनेक रूप में श्रीअवध में विद्यमान हैं। उनमें से सबसे पहली स्मृति श्रीरामवल्लभाकुञ्ज के श्रीयुगलसरकार हैं। दूसरी स्मृति श्रीहनुमानबाग है और उसी के समक्ष श्रीहनुमान-वाटिका भी है। ये स्मृतियाँ सैकड़ों वर्षों तक ज्यों की त्यों बनी रहेंगी।

विचार स्मृति का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इस क्षेत्र में भी स्वामीजी ने खूब रमण किया। स्वतंत्र रूप से सबसे पहले श्रीमहाराज जी ने ही श्रीरामार्चा का प्रचार किया। आपसे पहले इसका प्रचलन नाममात्र को था। वर्षों बीत जाते थे और कहीं रामार्चा का नाम नहीं। जबसे आपने इस कार्य को उठाया, तबसे इसका प्रचार क्रमशः बढ़ता ही गया। अब तो यह हाल है कि कोई सप्ताह ऐसा नहीं बीतता जिसमें कहीं न कहीं रामार्चा न हो।

आपकी कथा-वाचना-शक्ति अपूर्व थी। आपकी आवाज बहुत दूर तक जाती थी। उसमें माधुर्य्य का अनोखा मिश्रण

था। यों तो आप मणिरामजी की छावनी की व्यासगद्दी पर बैठकर श्रीमत् भागवत् आदि अष्टादश पुराण, जैमिनी भारत, महाभारत, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण आदि की कथा कहा ही करते थे तिस पर भी भक्तमाल, श्रीरामचरितमानस आदि गोस्वामीजी के काव्यों की कथा अत्यन्त श्रद्धा और प्रेम से कहते थे। श्रोता भी अधिकाधिक संख्या में उपस्थित होते थे।

सभा सोसाइटी के कार्यों में भी आप सदैव अग्रसर रहते थे। चौदह वर्षों तक आप श्रीसत्संग महासभा के सभापति रहे। श्रीरूपकला हरिनाम यश संकीर्तन सम्मेलन के अध्यक्ष पद पर आप सन् १९१४ ई० से जीवन के अन्त तक प्रतिष्ठित रहे। वैष्णव सम्मेलन-साधु-महामण्डल आदि सभाओं में भी आप बड़ी दिलचस्पी लेते थे। आजकल की रीति के अनुसार आप व्याख्यान भी बहुत अच्छा देते थे। आपमें प्राचीनता और अर्वाचीनता का अपूर्व सम्मिश्रण था। आपने अपने जीवन में विद्यादान भी खूब किया। आप अक्षर मात्र पढ़ाते थे। हिन्दी अथवा संस्कृत की कोई भी पुस्तक हो, आप उसे अवश्य पढ़ा देते थे। व्याकरण, काव्य, उपनिषद्, गीता, रामायण, भागवत्, महाभारत, सांख्ययोग आदि ग्रन्थ कितने ही साधुओं और ब्राह्मणों को आपने पढ़ाए। इतना ही नहीं संस्कृत क्विन्स कॉलेज की परीक्षा देने वाले छात्रों को भी आप पढ़ाते थे।

आपकी कृपा से लखपती व्यापारियों की डावांडोल स्थिति सँभल गई। आपके आशीर्वाद से कितने ही रोगी पूर्ण स्वस्थ हो गए। कितनी ही स्त्रियाँ पुत्रवती हो गई। जड़ी बूटियों का ज्ञान भी आपका उच्च कोटि का था। अपने शिष्य श्री विजयराघोदासजी को आप उन औषधियों का परिचय करा गए हैं। ब्राह्मी का सेवन माघ मास में सरयूजी में खड़े होकर मंत्रोच्चारणपूर्वक आपने स्वयं तो किया ही था और बहुतों को कराया था। इस बुद्धिवर्धक और धारणशक्ति उत्पादक प्रयोग की विधि आप ही को मालूम थी। यह सब परोपकार केवल लोक संग्रह की स्मृतियाँ हैं।

कहाँ तक कहा जाय, विश्व कल्याण के लिए ही भगवान ने आपको अपना प्रतिरूप बना कर भेजा था। आपको श्रीहनुमानजी का इष्ट था। अपने इष्टबल से आप सब कार्य बहुत ही सुगमतापूर्वक कर लेते थे। अन्त में मैं श्रीमहाराजजी के उदार भाव, सौम्य स्वभाव और उच्च अनुभव की चर्चा थोड़े शब्दों में करता हूँ। श्रीसरकार में नम्रता कूट-कूट कर भरी थी। बालक से वृद्ध तक सबके साथ विनम्र होकर समान प्रेम व्यवहार करते थे। किसी का दिल कभी नहीं दुखाते थे। सबकी रुचि का समुचित पालन करते थे। स्थान संचालन का सम्पूर्ण भार वहन करते हुए भी आगतों का स्वागत अनवरत किया करते थे। किसी व्यवहार में साधुता को ठेस नहीं लगने देते थे।

हे वैष्णव कुल भूषण ! आपका मंगलमय जीवन हमारे हृदयाकाश में वृहस्पति ग्रह की तरह सदा प्रकाशमान रहेगा। हमारे तमसाच्छन्न पथ को सदा प्रकाशित करता रहेगा। आपके निरीक्षण और नियंत्रण में रह कर हम पथभ्रष्ट नहीं हो सकते, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। आप नित्य धाम में दिव्य अपराजिता क्षेत्र में सुख से विहार करें। विरजा से परे नित्य सुख का उपभोग करें। और अपने व्यापक स्वरूप से— [redacted]

"तमसो मा ज्योतिर्गमय"

—:०:—